Con. 3. VII. 29. 48
350

अंक 7
संख्या 29

बृहस्पतिवार,
30 दिसम्बर
सन् 1948 ई.

भारतीय विधान-परिषद्

के

वाद-विवाद

की

सरकारी रिपोर्ट

(हिन्दी संस्करण)

विषय-सूची

पृष्ठ

विधान का मसौदा-(जारी)..... 1929-2007

[अनुच्छेद 60, 61 तथा 62 पर विचार]

भारतीय विधान-परिषद्

बृहस्पतिवार, 30 दिसम्बर सन् 1948 ई.

उपाध्यक्ष (डॉ. एच.सी. मुकर्जी) की अध्यक्षता में भारतीय विधान-परिषद् की बैठक कांस्टीट्यूशन हाल, नई दिल्ली में प्रातः 10 बजे हुई।

विधान का मसौदा-(जारी)

अनुच्छेद 60-(जारी)

***उपाध्यक्ष** (डॉ. एच.सी. मुकर्जी): मुझे अभी स्थगन-प्रस्ताव की सूचना मिली है। इस पर श्री महावीर त्यागी के हस्ताक्षर हैं। भारतीय विधान-परिषद् की कार्यप्रणाली के नियमों तथा स्थायी आदेशों के नियम 26 के अधीन में इसको नियम-विरुद्ध ठहराता हूं। क्या सभा यह चाहती है कि स्थगन-प्रस्ताव में जो बात दी हुई है वह उसे बताई जाये?

***माननीय सदस्य:** जी हां, जी हां।

***श्री नज़ीरुद्दीन अहमद** (पश्चिमी बंगाल : मुस्लिम): श्रीमान्, एक औचित्य प्रश्न है। क्या स्थगन-प्रस्ताव इस सभा में रखा जा सकता है?

***उपाध्यक्ष:** मैं स्थगन-प्रस्ताव को पढ़ कर सुनाता हूं:

> "मैं यह प्रस्ताव प्रस्तुत करना चाहता हूं कि इंडोनेशिया पर अभी हाल में किये गये आक्रमणों के संबंध में भारतीय सरकार की विचारधारा पर विचार-विमर्श करने के लिये यह सभा स्थगित की जाये।"

भारतीय विधान-परिषद् की कार्यप्रणाली के नियमों तथा स्थायी आदेशों के नियम 26 के अधीन इसको नियम-विरुद्ध ठहराया जाता हैं?

अब हम अनुच्छेद 60 पर आगे विचार करेंगे। क्या पोकर साहिब बहादुर सभा में उपस्थित हैं।

---

*इस चिह्न का अर्थ है कि यह अंग्रेजी वक्तृता का हिन्दी रूपान्तर है।

***बी. पोकर साहिब बहादुर** (मद्रास : मुस्लिम): उपाध्यक्ष, यह खण्ड जिस रूप में है, उससे तो अवश्य ही यह परिणाम होगा कि संघात्मक राज्य-प्रणाली एकात्मक राज्य-प्रणाली में परिवर्तित हो जायेगी। यह बड़े गंभीर महत्त्व का विषय है। हम इस विचारधारा के अनुसार कार्य करते चले जा रहे हैं और यह घोषित भी किया जा चुका है कि जिस विधान का हम निर्माण कर रहे हैं, वह संघात्मक है। श्रीमान्, यदि इस अनुच्छेद को जिससे कि केन्द्रीय सरकार का वे अधिशासी शक्तियां भी मिल जाती हैं जो समवर्त्ती सूची में दिये हुए विषयों से संबंधित हैं, यदि इस अनुच्छेद को उसके वर्तमान रूप में स्वीकार किया गया तो इस विधान को संघात्मक विधान कहना किसी प्रकार से भी उपयुक्त न होगा। उसका यह नाम भ्रमात्मक होगा। इस प्रकार के प्रावधानों के होते हुए भी इस विधान को संघात्मक कहना केवल एक ढोंग होगा। यह कहा जाता है कि समवर्त्ती सूची में दिये हुए कुछ विषयों के संबंध में केंद्र को विधायिनी शक्तियां देना आवश्यक है, पर श्रीमान्, केन्द्र को उनके संबंध में अधिशासी शक्तियां देने से तो बात ही दूसरी हो जाती है। इन प्रावधानों का यह प्रभाव होगा कि प्रान्तों के पास कुछ भी अधिकार नहीं रहेंगे। समवर्त्ती सूची में भी अनेकों ऐसे विषय हैं जिनको उसमें स्थान ही नहीं मिलना चाहिये। जब समय आयेगा हमें उन पर विचार करना होगा। परन्तु यह खण्ड उन विषयों के संबंध में भी केन्द्र को अधिशासी शक्तियां प्रदान करता है जिनका विवरण समवर्त्ती सूची में दिया गया है। इस बात को माननीय पंडित कुंजरू ने बड़ी योग्यता तथा कुशलतापूर्वक स्पष्ट किया है। उन बातों को लेकर मैं सभा का समय लेना नहीं चाहता हूं।

अब मैं इस विषय के एक अंग की ओर संकेत करना चाहता हूं और वह यह है। भारत जैसे महान प्रायद्वीप में केन्द्र के अधिकारियों के लिये देश के सुदूरवर्ती भागों में रहने वाले लोगों की आवश्यकताओं को समझना बड़ा कठिन होगा और यही कमी कानून निर्माण के संबंध में भी है। परन्तु यदि समवर्त्ती सूची के विषयों से संबंधित कानून की अधिशासी शक्ति भी केन्द्र को दे दी जाती है तो फल यह होगा कि यदि उस कानून को बरतने के ढंग के खिलाफ किसी व्यक्ति को शिकायत होती है तो शिकायत दूर कराने के लिये उस व्यक्ति को हजारों मील दूर वाले केन्द्र में ही शरण लेनी होगी। और यह बात सब व्यक्तियों

के लिये संभव नहीं है कि वे देश के एक भाग से दूसरे भाग को हवाई जहाज द्वारा कुछ ही घंटों में जा सके। श्रीमान्‌जी, मेरा निवेदन है कि यदि हम समवर्त्ती सूची के वर्तमान रूप पर विचार करें तो हमको यह विदित होगा कि उसमें ऐसे अनेकों विषय हैं जिनको उसमें स्थान नहीं मिलना चाहिए। यदि केन्द्र के नियंत्रणाधीन अधिकारियों द्वारा इन विषयों के बारे में कार्यवाही की जानी है तो मेरी समझ में उससे बड़ी कठिनाई होगी। इसके साथ ही मेरा यह भी निवेदन है कि राजतंत्र में बहुत-सी खराबियां हो जायेंगी और फलस्वरूप शासनतंत्र के नाम पर तो गहरा धब्बा ही लग जायेगा।

जिन विषयों का उल्लेख समवर्त्ती सूची में किया गया है उनके बारे में, कार्यपालिका जिस रीति से काम करेगी उससे यदि किसी व्यक्ति को कोई कष्ट हुआ तो उसे उस कष्ट से त्राण पाने के लिए बहुत दूर जाना होगा और फिर भी केन्द्र के अधिकारियों के लिए उसकी बात को समझने में बड़ी कठिनाई होगी। इस बात की ओर स्पष्ट संकेत किया जा चुका है कि समवर्त्ती सूची में जो विषय उल्लिखित हैं उनके बारे में कोई कार्यवाही करने का अधिकार अब तक प्रान्तीय सरकारों को प्राप्त है। उस व्यवस्था में परिवर्तन करना और इन विषयों के संबंध में कार्यवाही करने के अधिकारों को केन्द्रीय सरकार को देना ऐसा कदम है जिसे अत्यंत ही प्रतिक्रियावादी कहा जा सकता है। अंग्रेजों के समय में भी 1919 के बाद राजनैतिक सुधारों का मुख्य ध्येय था, प्रान्तों को स्वायत्तशासी बनाना। अब जब कि हमने स्वतंत्रता प्राप्त कर ली है, प्रान्तीय स्वायत्तशासन को मेटना और समस्त शक्तियों को केन्द्र में केन्द्रित करना तानाशाही कायम करने के बराबर ही है और यह एक निन्दनीय कदम है। आजकल तो यह आम रिवाज हो गया है कि जिसको मिटाना है उस पर कोई लांछन लगा दिया जाये। कुछ लोग अपने सामूहिक अधिकारों की सरंक्षा की मांग करते हैं, तो यह साम्प्रदायिकता है और उसकी निन्दा की जाती है। यदि अपने विशेष विषयों पर स्वयं विचार करने के लिए प्रान्त अपनी स्वतंत्र सत्ता प्राप्त करना चाहते हैं तो उसको प्रान्तीयता कहा जाता है और उसकी निन्दा की जाती है। यदि लोग भाषा के आधार पर प्रान्तों के पृथक्‌करण पर जोर देते हैं तो उसको पृथक्‌वाद कहा जाता है और उसकी निन्दा की जाती है। मैं केवल यही चाहता हूं कि ये लोग जो इन वादों की निन्दा करते हैं तनिक इस ओर भी ध्यान दें कि घटनाओं का बहाव किस ओर है। आज जगत में सर्वाधिकारवाद का जोर है। मुझे भय है कि इन विभिन्न वादों अर्थात् साम्प्रदायवाद, प्रान्तीयवाद और पृथक्‌वाद की निन्दा करने का फल यह होगा कि

[बी. पोकर साहिब बहादुर]

हम सर्वाधिकारवाद और यहां तक कि तानाशाही की ओर अग्रसर हो जायेंगे। यदि विशिष्ट समुदायों के लोगों के लिये जिनकी अपनी विशिष्ट विचारधारा है, पृथक्-पृथक् संस्थायें हैं तो साम्प्रदायवाद अथवा कोई अन्य वाद कह कर उनकी निन्दा की जाती है। यदि किसी प्रकार के विरोध की इस प्रकार से निन्दा की जाती है तो उसका फल यही होगा कि एक बहुत ही निम्न प्रकार का सर्वाधिकारवाद यहां फैल जाये। इस संविधान के उपबंधों का जो रूप है उससे यह विदित होता है कि हम उसी ओर जा रहे हैं।

अत: अब समय आ गया है कि हम इस प्रवृत्ति पर ध्यान दें और उससे बचने का प्रयत्न करें जिससे कि आगे चल कर हम दु:खों में न फंसें। मेरा निवेदन है कि इस संशोधन द्वारा एक बहुत ही साधारण मांग की गई है कि इस उपबंध में ऐसा परिवर्तन कर दिया जाये कि समवर्ती सूची के विषयों के संबंध में चाहे विधायिनी शक्ति केन्द्र में ही रहे पर उन विषयों से संबंधित कार्यपालिका शक्ति प्रान्त के हाथ में दे दी जाये। यह एक बहुत ही साधारण मांग है। जैसा कि बताया जा चुका है, विभिन्न प्रान्तों के माननीय सदस्य इस बात का अनुभव भी करते हैं कि इन कार्यपालिका शक्तियों को प्रान्तों के हाथ में ही रहने दिया जाये। पर जैसा कि हम सबको विदित है वे लोग अपने विचारों को कारगर करने में असमर्थ हैं और उनकी इस असफलता के कारण भी स्पष्ट हैं। मैं ऐसे प्रश्न उठाना नहीं चाहता जिनके कारण यहां पर विवाद उत्पन्न हो जाये। किन्तु फिर भी मेरा निवेदन है कि जो सदस्य सचमुच यह अनुभव करते हैं कि यह संशोधन लोक कल्याण के लिये है और उनका अन्त:करण भी यह कहता हो कि उसे स्वीकार कर लेना चाहिये तो उन्हें अपने अन्त:करण की प्रेरणा पर चलकर अपने विचारों को कारगर करने में नहीं हिचकिचाना चाहिये। मैं माननीय सदस्यों से फिर यही कहता हूं कि जिस कर्त्तव्य का हमें पालन करना है वह कर्त्तव्य बड़ा ही पवित्र है। यहां किये गये अपने प्रत्येक कार्य के लिये हमें ईश्वर के सामने जवाबदेही देनी होगी और यदि कोई यह समझता हो कि दल उद्बोधक के आदेशों पर न कि अपने अन्त:करण के अनुसार कार्य करने में उसका बचाव है तो मैं उससे यही कहूंगा कि वह सच्चाई से बहुत दूर है और उसे समय बतायेगा कि जिसे उसने बचाव समझा था वह सचमुच में बचाव नहीं था।

***श्री एल. कृष्णास्वामी भारती** (मद्रास : जनरल): श्रीमान्, क्या इन सब बातों का उल्लेख करना आवश्यक है?

***बी. पोकर साहिब बहादुर:** मैं इस कारण इन बातों का उल्लेख कर रहा हूं कि ये वे सच्चाइयां हैं जिनको अस्वीकार नहीं किया जा सकता।

***उपाध्यक्ष:** मैं समझता हूं कि पोकर साहिब की इन बातों से नया विवाद पैदा हो जायेगा।

***बी. पोकर साहिब बहादुर:** उपाध्यक्ष, श्रीमान्, मैं पहले ही कह चुका हूं कि मैं वाद-विवाद में नहीं पड़ना चाहता हूं परन्तु प्रत्येक माननीय सदस्य से निवेदन करने का मुझे अधिकार है।

***उपाध्यक्ष:** ऐसा करने से माननीय सदस्य को कोई रोक नहीं पा रहा है।

***बी. पोकर साहिब बहादुर:** मुझे प्रत्येक सदस्य से यह निवेदन करने का अधिकार है कि वह अपने अन्त:करण के अनुसार अपने मताधिकार का प्रयोग करे। इसी कारण मैं यह निवेदन कर रहा हूं। उन स्पष्ट कारणों के कारण मुझे यह निवेदन करना पड़ रहा है, जिनका बयान करना मैं आवश्यक नहीं समझता। माननीय सदस्य उसे जानते हैं, मैं जानता हूं और माननीय उपाध्यक्ष भी जानते हैं। अत: मैं उन बातों का जिक्र यहां नहीं करना चाहता।

***उपाध्यक्ष:** माननीय उपाध्यक्ष को इस बात का कुछ भी ज्ञान नहीं है।

***बी. पोकर साहिब बहादुर:** श्रीमान्, मेरी आशा तो यही है कि माननीय उपाध्यक्ष इस विषय के बारे में साफ़-साफ़ बयान करने के लिये मुझे बाध्य नहीं करेंगे। मैं यह मानता हूं कि माननीय उपाध्यक्ष यह जानते हैं कि दल की ओर से आदेश दिये जाते हैं और सदस्यों को उन आदेशों का पालन करना पड़ता है। संक्षेप में इतना ही कहना काफी होगा। इस बात को सब जानते हैं और इसको अस्वीकार नहीं किया जा सकता। और इसीलिये मैं विशेष रूप से माननीय सदस्यों से यह निवेदन करता हूं कि यदि उनका समाधान हो गया हो कि यह ऐसा विषय है कि जिसके संबंध में उन्हें इस संशोधन का समर्थन करना चाहिये तो फिर उसका समर्थन करने में उन्हें कोई संकोच नहीं होना चाहिये और यदि

[बी. पोकर साहिब बहादुर]

वे आवश्यक समझें तो वे जिस दल से सम्बद्ध हैं उसकी अनुमति भी प्राप्त कर लें।

***श्री टी.टी. कृष्णमाचारी** (मद्रास : जनरल): उपाध्यक्ष, श्रीमान्, अनुच्छेद 60 पर सभा के समक्ष जो दो संशोधन हैं उनका विरोध करना मैं अपना कर्त्तव्य समझता हूं। श्रीमान्, दोनों संशोधन दो पृथक् श्रेणियों में आते हैं। मेरे माननीय मित्र श्री के.टी.एम. अहमद इब्राहिम द्वारा प्रस्तावित संशोधन अनुच्छेद 60 के उपखंड (1) के परादिक को निकालना चाहता है। संशोधन का मूल रूप यही था। यदि इस रूप में यह संशोधन स्वीकार किया गया तो इसका यह अर्थ होगा कि संघ की जितनी विधायिनी शक्ति है उतनी ही कार्यपालिका शक्ति हो जायेगी अर्थात् कार्यपालिका शक्ति का विस्तार केवल सूची 1 पर ही नहीं होगा वरन् वह सूची 3 पर भी होगा।

यह प्रत्यक्ष है कि बाद में मेरे माननीय मित्र को अपनी गलती मालूम हुई और फिर उन्होंने अनुच्छेद 60 के उपखंड (1) में संशोधन करने का प्रयास किया जो कार्यपालिका संबंधी विषयों में संघ की शक्ति को परिसीमित करता है और समवर्त्ती विधान के क्षेत्र में उसके प्रयोग का पूर्णतया निषेध करता है। श्रीमान्, सभा इस बात से परिचित है कि इसका मतलब भारतीय सरकार के अधिनियम के वर्तमान प्रावधानों से भी पीछे हटना होगा। मेरे माननीय मित्र पंडित हृदयनाथ कुंजरू ने इस गलती को दूर किया। अपनी स्वभावजन्य मंजी हुई भाषा में उन्होंने ऐसे संशोधन को रखा जो उस स्थिति से बिल्कुल मेल खाता है जो भारत शासन अधिनियम, 1935 द्वारा अवेक्षित थी। उससे केन्द्र को उस कार्यपालिका शक्ति से अधिक शक्ति नहीं मिलती जो कि केन्द्र को भारत शासन अधिनियम, 1935 के अन्तर्गत उसे प्राप्त है। श्रीमान्, इन दोनों संशोधनों के पेश करने वालों के दृष्टिकोण में बहुत अन्तर भी है। इस संशोधन के तीनों समर्थकों ने, और इनमें इसके प्रस्तावक श्री इब्राहिम भी सम्मिलित हैं, अनुच्छेद 60 (1) के परादिक के बारे में राजनैतिक आधार पर आपत्ति की है। मेरे माननीय मित्र पंडित हृदयनाथ कुंजरू ने मानसिक आधार पर इसमें आपत्ति की है। पहले मैं अपने माननीय मित्र पंडित कुंजरू की आपत्तियों पर विचार करता हूं। उन्होंने कहा कि यदि उस स्थिति में किंचित्मात्र भी परिवर्तन कर दिया गया तो भारत शासन अधिनियम ने इस बारे में स्थिर की थी कि समवर्त्ती क्षेत्र में केन्द्र किन

कार्यपालक कार्यों का प्रयोग कर सकेगा तो इस सभा के समक्ष प्रस्तुत संविधान के मसौदे का संघ अथवा संघवाद एक तमाशा हो जायेगा। पंडित कुंजरू एक ऐसे व्यक्ति हैं जो अपने विशाल पांडित्य के लिये विख्यात हैं। उनका अनुभव बहुत गहरा है। साथ ही इस बारे में विधि स्थापना के उनके अधिकार के बारे में ही मैं कोई विवाद नहीं करना चाहता हूं। परन्तु फिर भी उन्होंने यह कह कर एक मूलभूत भूल की है कि एक विशेष प्रकार के संघवाद अथवा विधान को ही संघात्मक कहा जा सकता है और संघात्मक अथवा संघवाद का अपना ही एक निश्चित पूर्ण अर्थ है जिसमें कोई भी सम्भाव्य परिवर्तन नहीं किया जा सकता। मैं यह भी कह देना चाहता हूं कि पंडित कुंजरू का यह कथन भी बड़ी भारी भूल पर आधृत है कि यदि इस अनुच्छेद के परादिक को रहने दिया गया तो हमारे संविधान का रूप संघात्मक न रहेगा।

श्रीमान्, संघात्मक संविधान की अनेकों और आपस में अत्यन्त भिन्न व्याख्यायें हैं। उदाहरणार्थ संसार में जो चार प्रसिद्ध संघात्मक संविधान हैं उनमें से एक कनाडा का संविधान है। कुछ लोग उसे भी पूर्णतया संघात्मक नहीं मानते हैं। इसके विपरीत सच्चाई यह है कि कार्य रूप में कनाडा का संविधान आस्ट्रेलिया के संविधान से भी अधिक संघात्मक है जब कि संविधानिक दृष्टिकोण से आस्ट्रेलिया के संविधान को नि:सन्देह पूर्णतया संघात्मक ही माना जा सकता है। बहुधा यह कहा जाता है कि कोई भी संविधान इस कारण संघात्मक कहा जाता है क्योंकि पहले उसके मूलभूत अंगों का निर्माण होता है और तत्पश्चात् केन्द्र का निर्माण होता है। इस प्रकार का मत लार्ड सेलबोर्न ने एक विषय पर विचार के दौरान में प्रकट किया था जो आस्ट्रेलिया के किसी मुकदमे से पैदा हुआ था और उनको विचार के लिऐ सौंपा गया था। उन्होंने कहा था कि कनाडा का संविधान सच्चे अर्थ में सांधिक संविधान नहीं है क्योंकि पार्लामेंट ने ब्रिटिश उत्तरी अमेरिका अधिनियम बनाते समय ही केन्द्र और प्रान्तों का साथ-साथ निर्माण किया था।

इसी प्रकार इस बारे में कि किस बात के होने से कोई तंत्र संघ कहा जा सकता है, विभिन्न मत है। एक मत यह भी है कि अवशिष्ट सत्ता प्रादेशिक अंगों में निहित होनी चाहिए न कि केन्द्र में। किन्तु यह कहना कठिन है कि इस बात से संघ के स्वरूप में कहां और कैसे कमी होती है। संयुक्त राष्ट्र अमेरिका में

[श्री टी.टी. कृष्णमाचारी]

संघ का हवाला देकर इस बात पर जोर दिया जाता है। यदि यह बात ठीक है तब तो वास्तव में सभा के समक्ष यह जो संविधान का मसौदा है वह संघात्मक नहीं है क्योंकि पहली बात तो यह है कि अवशिष्ट सत्ता प्रादेशिक अंगों में निहित नहीं है और दूसरी बात यह है कि यह संविधान का मसौदा दोनों प्रान्तों और केन्द्र की साथ-साथ उत्पत्ति करता है।

श्रीमान्, यदि हम यह बात मान लें तो हम केवल सिद्धान्त के आगे से ही बंधे रहेंगे। किन्तु मैं तो यही समझता हूं कि कोई ऐसा कारण नहीं है कि हम आज भी इस सिद्धान्त के वाग्जाल में फंसे रहें और संविधान को केवल सिद्धान्त की कसौटी पर ही परखें। इतना तो निश्चयपूर्वक कहा जा सकता है कि इस संविधान के पीछे और इसके आधार पर संघवाद का सिद्धान्त स्थिर है। व्यवहार में यह संघतंत्र देश के लिये कितना लाभदायक होगा। तथा कहां तक विभिन्न शक्तियों की पारस्परिक क्रिया और प्रतिक्रिया के फलस्वरूप प्रान्तों को उस स्वायत्तता से, जो हम आज उन्हें दे रहे हैं, अधिक या कम स्वायत्तता प्राप्त हो जाती है। इस बारे में मैं यह बात पुनः दोहरा देना चाहता हूं कि कनाडा में ऐसे संविधान के अधीन भी जिसके बारे में यह स्पष्ट मान्यता है कि वह सचमुच में साधक नहीं है, कार्यरूप में प्रान्तों को उससे कहीं अधिक स्वेच्छा से काम करने की स्वतंत्रता है जितनी कि आस्ट्रेलिया के संविधान के अधीन है और जहां कि इकाइयों के मामलों में केन्द्र पर्याप्त हस्तक्षेप करता रहा है।

***पंडित हृदयनाथ कुंजरू** (संयुक्तप्रान्त : जनरल): क्या मैं माननीय सदस्य से बीच में यह पूछ सकता हूं कि वे यह जानते हैं या नहीं कि प्रिवी कौंसिल के निर्णय के कारण कनाडा में जितनी शक्ति समझी जाती है उससे अधिक प्रान्तों को प्राप्त है?

***श्री टी. टी. कृष्णमाचारी:** इससे तो मेरी बात यह पुष्ट होती है कि भारतीय संविधान भी पास होने के पश्चात् या तो पूर्णतया संघात्मक हो जायेगा या कुछ समय के लिये व्यवहार में अंशतः संघात्मक रहेगा। यदि हम केन्द्र तथा प्रादेशिक अंगों के अधिकार क्षेत्र की कोई व्यवस्था नहीं करते तो न्यायालय उसका निर्वचन एक या दूसरे पक्ष में करेंगे ही। यह बात ध्यान में आसानी से

आ सकती है कि यदि हम समवर्त्ती सूची के विषयों पर कार्यपालिका शक्तियों के प्रयोग के बारे में कुछ भी न कहें तो भी किसी न किसी प्रकार न्यायालय उसकी व्यवस्था करेंगे ही और परिस्थितियों के अनुसार ही तथा इस संबंध में न्यायाधीशों के जो विचार होंगे तथा जिस निर्णय पर वे पहुंचेंगे उनके अनुसार यह विधान अधिक संघात्मक अथवा कम संघात्मक हो जायेगा। अत: मैं समझता हूं कि मेरे माननीय मित्र की आपत्ति सारहीन है और मैं नहीं समझता कि मैं अधिक समय तक उसका उत्तर दूं। श्रीमान्, समवर्त्ती शक्तियों के संबंध में कार्यपालिका कार्यवाही करने के संबंध में, और इस समय इसी बारे में आपत्ति उठाई गई है, ठीक-ठीक स्थिति तो यह है कि भारत शासन अधिनियम इस बात को ध्यान में रख कर बनाया गया था कि उसमें उपबन्धों में स्पष्टता और असंदिग्धता हो। प्रोफेसर के.सी. ह्वीर ने संघ शासन के ऊपर लिखी गई अपनी छोटी किन्तु सारगर्भित पुस्तक में यद्यपि वह यह नहीं मानते कि भारत शासन अधिनियम ने पूर्णरूपेण संघतंत्र की स्थापना की है तो भी वे उस पुस्तक में इस बात को जोर से कह सकते हैं कि संघतंत्र के संविधानों में उस अधिनियम का बड़े मार्के का स्थान है क्योंकि उसने केन्द्र और इकाइयों की शक्तियों का तीन सूचियों में ऐसा बंटवारा कर दिया है कि कोई बात बाकी रही ही नहीं है।

सच तो यह है, श्रीमान्, कि जहां तक इस समवर्त्ती सूची के उपबंधों का सवाल है वहां तक संविधान का मसौदा अथवा सन् 1935 का अधिनियम किसी प्रकार से भी अनोखा नहीं है। सच तो यह है कि कुछ बातों के अतिरिक्त जिनकी गणना आस्ट्रेलिया के संविधान की धारा 52 में की गई है, आस्ट्रेलिया के संविधान ने भी विधायी प्रकार्य के सम्पूर्ण क्षेत्र को समवर्त्ती सूची में ही रखा है। हमारे संविधान के मसौदे के अनुच्छेद 60 के समान ही आस्ट्रेलिया के संविधान में धारा 61 है। उसमें यह कहा गया है कि संविधान के निष्पादन और बनाये रखने तक और राष्ट्र संघ के कानूनों को बनाये रखने तक कार्यपालिका शक्ति विस्तृत है। कामनवेल्थ द्वारा कार्यपालक शक्ति के अबाध प्रयोग में बाधा डालने के राज्य के प्रयास को 1903 में पैडन के विरुद्ध डी एमडन के अभियोग में विधिविरुद्ध ठहराया गया था। आस्ट्रेलिया संविधान में शक्तियों के विभाजन की स्थिति अस्पष्ट है और भारत शासन अधिनियम के निर्माता इस तथ्य से परिचित थे और इसीलिये उन्होंने तीन सूचियां बनाईं जो बहुत स्पष्ट और सम्पूर्ण हैं।

[श्री टी.टी. कृष्णमाचारी]

श्रीमान्, यदि आप उन पिछली बातों पर ध्यान दें जो कनाडा में हुईं किन्तु जहां कालक्रम ने न्यूनाधिक रूप में संघानीय तथा प्रान्तीय कार्यपालक शक्ति के यथार्थ क्षेत्र को परिसीमित कर दिया है तो हमें यह विदित होगा कि वहां अनेकों महत्त्वपूर्ण विषयों के बारे में संघर्ष के लिये गुंजाइश बनी रही। और संघ और प्रान्त के परस्पर संबंध में रोवल-सिरोइस रिपोर्ट द्वारा कुछ परिवर्तनों की सिफारिश की गई है। उन्होंने यह सिफारिश की है कि विशेषकर श्रम-संबंधी विधि के निर्माण-क्षेत्र में तथा ऐसी बेकारी, बीमा इत्यादि सामाजिक सेवाओं के क्षेत्र में संघ को केवल कानून निर्माण के प्रयोजन के लिये ही अधिकार नहीं होना चाहिये जो कि किसी सीमा तक उसको अब भी है वरन् कार्यपाल प्रकार्य के क्षेत्र में भी इस बारे में उसे अधिकार होना चाहिये। इस पृष्ठभूमि में और गत 12 वर्षों के अनुभव को ध्यान में रखकर मैं आपके सामने भारत शासन अधिनियम की इस बारे में समीक्षा करता हूं कि उसने समवर्त्ती सूची के अधीन शक्तियों के बंटवारे में क्या स्थिति अपनाई है।

श्रीमान्, खासतौर से शक्तियों के बंटवारे के विषय में तथा केन्द्रीय सरकार और प्रान्तीय सरकारों को कार्यपालिका शक्तियों के प्रदान के संबंध में बहुत सावधानी से काम लिया है। समिति का इस बारे में निम्न मन्तव्य है–

> "हमारा विचार है कि इसका हल इस तरह से हो सकता है कि हम समवर्त्ती सूची में रखे जाने वाले विषयों में से उन विषयों में जिन्हें मोटे तौर पर सामाजिक और आर्थिक विधान से संबंधित कहा जा सकता है और उन विषयों में जिन्हें विधि और व्यवस्था तथा वैयक्तिक अधिकारों और प्रतिष्ठा से संबंधित माना जा सकता है, विभेद करे। पिछली कोटि के विषय अपेक्षाकृत अधिक होते हैं और इन विषयों संबंधी कानून को काम में लाना अधिकतर प्रान्तीय न्यायालयों के हाथों में होगा जिनके सामने कि प्रान्तीय अधिकारी अभियोग लाने के लिये जिम्मेदार होते हैं यह स्पष्ट है कि न्यायालयों को संघ की ओर से कोई निर्देश नहीं दिया जा सकता और न इस प्रकार का कोई निर्देश अभियोग लाने वाले प्रान्तीय अधिकारियों को ही अनौचित्य के बिना किये जा सकते हैं। अत: मैं समझता हूं कि जिस प्रकार व्यावहारिक रूप से संघ अधिकारियों का इस दशा में कोई अधिकार नहीं होगा,

उसी प्रकार विधि द्वारा भी उनको इस बारे में प्रशासनीय नियंत्रण का कोई अधिकार नहीं होना चाहिये! दूसरे प्रकार के समवर्त्ती विषयों में वे विषय हैं जिनका संबंध विशेषकर खानों, कारखानों, सेवा-योजक के उत्तरदायित्व तथा मजदूरों का हानिपूर्ण, श्रमिकसंघों, श्रमिकों के हितों, औद्योगिक झगड़े, संक्रामक रोग बिजली इत्यादि इत्यादि के आनियमन से होता है। इस कोटि के विषयों के संबंध में हमारा विचार है कि जहां आवश्यक हो संघ सरकार को प्रसंगानुसार कानून को प्रावर्तन में लाने के लिये निर्देश देने का अधिकार होना चाहिये। किन्तु इस अधिकार का विस्तार उतना ही होना चाहिये जितना कि संबंधित संघ अधिनियम में विहित होगा।"

श्रीमान्, इस योजना के आधार पर भारतीय शासन अधिनियम बनाया गया था। यही कारण था कि उसकी धारा 126 में एक उपखंड बढ़ाया गया था अर्थात् उपखंड (2) जो समवर्त्ती सूची के भाग 2 में दिये गये विषयों के संबंध में केन्द्र को कार्यपालिका निदेश देने का अधिकार प्रदान करता है। श्रीमान्, अपने माननीय मित्रों से मेरा निवेदन है कि वास्तविक व्यवहार से हमें यह ज्ञान हुआ है कि जहां तक भाग 2 का संबंध है कार्यपालिका निदेश केन्द्र द्वारा बनाये गये कानून के उद्देश्यों को पूरा करने के लिये पर्याप्त नहीं होते। श्रीमान्, अतः एक महत्त्वपूर्ण समस्या हमारे सामने पैदा होती है। उत्तरदायी शासन में ऐसे कानूनों के उद्देश्य को पूरा कराने के लिये उत्तरदायित्व किस प्रकार हो? प्रान्तीय सरकारें प्रान्तीय विधान मंडलों के प्रति उत्तरदायी हैं और अब तक ऐसा हुआ है कि प्रान्तीय कार्यपालक वर्ग बहुधा यह कह देता है कि हां, केन्द्र ने अपने निर्देश दिये हैं, हमारे पास धन नहीं है, और अतः हम नहीं जानते कि क्या करें। यह बहुत ही अनुचित है कि इन विषयों के बारे में कार्य तो हम करें और कानून कोई दूसरा ही बनाये। भारतीय शासन अधिनियम की वर्तमान योजना दोषपूर्ण है। क्योंकि कार्यपालन उत्तरदायित्व का क्षेत्र अस्पष्ट है। हम नहीं जानते कि यह कहां से आरंभ होता है और कहां समाप्त होता है और इस परादिक को, जिसकी कि सावधानीपूर्वक रचना की गई है, रखने का एक कारण भी है कि जब भारतीय सरकार सही अर्थ में कार्यपालक उत्तरदायित्व का भार प्रान्तों अथवा प्रादेशिक अंगों के कन्धों पर डालना चाहती हो तो वह ऐसा कर सकेगी चाहे फिर उसने अपने कानून में यह उल्लेख न किया हो कि उसे किसी विशिष्ट कानून के संबंध में कार्यपालक

[श्री टी.टी. कृष्णमाचारी]

अधिकार प्राप्त हैं। धारा 126 (2) में जो योजना रखी गई है उससे इसमें भिन्नता है और मैं तो यह समझता हूं कि जहां तक आपसी अन्तर की रेखा स्पष्ट कर दी गई है वहां तक तो कम से कम यह परिवर्तन बुद्धिमत्तापूर्ण ही है। जहां भी यह बात संभव या आवश्यक होगी वही और विशेषतया सामाजिक क्षेत्र के लिये अथवा सामाजिक बीमा, वृत्तिहीनता और संभवत: श्रम क्षेत्र में संघ सरकार कार्यपालक भार संबंधित नियमों में यह विहित करके दे सकेगी कि इन क्षेत्रों में कार्यभार उसके ऊपर होगा और जहां ऐसा कोई विशेष प्रावधान न होगा वहां प्रान्तों पर कार्यपालक भार होगा और प्रान्तीय मंत्री कानून के उद्देश्य पूरा कराने के उत्तरदायित्व से मुक्त नहीं हो सकेंगे। श्रीमान्, मैं चाहता हूं कि मेरे माननीय मित्र श्री जगजीवन राम जो कुछ कल्याणकारी कानूनों के लिये जिम्मेदार रहे हैं, इस विषय पर भाषण दें। विशेषतया मैं यह इसलिये चाहता हूं क्योंकि इस क्षेत्र में अनेकों बार हमें यह लगा है कि हम पक्षपातपूर्ण कानून बनाने से मुश्किल से ही बच सकते हैं। मेरे विचार में यह ऐसा कारण है और अनुभव से इसको पूरा बल प्राप्त होता है कि हम इस अनुच्छेद के खण्ड (1) के परादिक के सदृश कोई प्रावधान रखें और मैं आपको विश्वास दिला सकता हूं कि वह इस विधान के मसौदे के संघात्मक स्वरूप में कुछ भी कमी नहीं करता। आखिरकार संघात्मक संविधान होता कैसा है? वह ऐसा संविधान होता है जिसमें उन क्षेत्रों का स्पष्ट परिसीमन होता है जिसमें क्रमश: इकाइयां और केन्द्र सर्वोच्च होते हैं। किन्तु जहां इस प्रकार का परिसीमन है संभव नहीं होता तो वहां किसी अन्य रीति से इस बात का उल्लेख करना पड़ता है कि किसी बात के लिये उत्तरदायित्व किस पर रखा जायेगा। इस परादिक के कारण यह संविधान अन्य प्रकार से जितना संघात्मक बन सकता था उससे अधिक संघात्मक हो जाता है। अत: मैं समझता हूं कि मेरे माननीय मित्र पंडित हृदयनाथ कुंजरू की आपत्ति सारहीन है, और इन बारह वर्षों में 1935 के अधिनियम का जो अनुभव हुआ है उस अनुभव का उस आपत्ति में कोई विचार नहीं रखा गया है। और न उसमें संघवाद के सिद्धान्त तथा व्यवहार का ही विचार रखा गया है, यहां तक कि उसमें आस्ट्रेलिया तथा कनाडा में जो अनुभव प्राप्त हुआ है उसका भी कोई विचार नहीं रखा गया है, अत: उस आपत्ति को हमें नहीं मानना चाहिये।

श्रीमान्, अब मैं दूसरे संशोधन पर विचार व्यक्त करूंगा। उस संशोधन पर जो मूल रूप में अपूर्ण था और जो समवर्त्ती विषयों के संबंध में प्रान्तों को और

अधिक शक्तियां प्रदान करने के पक्ष में है और कार्यपालक क्षेत्र में केन्द्र की शक्तियों को लगभग समाप्त-सा करता है। इस संशोधन को मेरे माननीय मित्र श्री के.टी.एम. अहमद इब्राहिम ने पेश किया था और श्री मुहम्मद इस्माइल तथा श्री पोकर ने योग्यतापूर्वक इसका समर्थन किया है। सभा को यह विदित होगा कि ये माननीय सदस्य बड़े विख्यात व्यक्ति हैं विशेषकर श्री मुहम्मद इस्माइल जो भारत में मुस्लिम लीग के अध्यक्ष हैं और श्री जिन्ना के वास्तविक उत्तराधिकारी हैं। जब वे कोई राजनैतिक बयान देते हैं तो उसको यह कह कर नहीं टाला जा सकता कि इसका कुछ भी महत्व नहीं है। भारतीय शासन अधिनियम में इतनी बारीक बातों के लिये क्यों प्रावधान किये गये, और भूतकाल में प्रान्तीय स्वायत्तता के बारे में अधिक आग्रह क्यों किया गया और हम लोगों ने इस देश में मंत्रिमंडल को 16 मई 1946 वाली योजना क्यों स्वीकार की, इन सब बातों का एक कारण यह बात थी कि मुस्लिम लीग यह चाहती थी कि उसके नियंत्रण में जितने प्रान्त हों उनमें वह मनमानी कर सकें। श्रीमान्, देश के दो भागों में विभाजन हो जाने के कारण वह स्थिति अब नहीं रही है। वह स्थिति अब ओझल हो चुकी है। मुझे ऐसा प्रतीत होता है कि मेरे माननीय मित्र पुराने झगड़े को पुनः शुरू कर रहे हैं अर्थात् यह कि प्रान्तों की शक्तियों को जबकि सच्चाई यह है कि प्रान्तों की शक्तियों को किसी प्रकार कम नहीं किया जा रहा है। इस संविधान के मसौदे की किसी विशिष्ट बात पर यदि विरोध है तो वह राजनैतिक कारणों से है न कि उसके किसी पहलू की अच्छाई-बुराई के कारण। मेरे इन माननीय मित्रों ने हम से कहा है कि हम सबको अपने अन्तःकरण के आदेशानुसार कार्य करना चाहिये। मैं इस सभा के माननीय सदस्यों से यह कहना चाहता हूं कि जिस रूप में अनुच्छेद 60 है, उसे उसी रूप में स्वीकार करने उनका अन्तःकरण किसी प्रकार से भी दूषित नहीं होगा, वे इस बात पर पूर्ण विश्वास करें कि प्रान्तों को स्वतंत्र रूप से कार्य करने में कोई बाधा नहीं होगी और यह बात सच है, हमारा इरादा प्रान्तों की कार्यपालक शक्तियों पर कोई भी प्रतिबन्ध लगाने का नहीं है। भविष्य में बनने वाली संसद् में प्रान्तीय मत का यथेष्ट रूप में प्रतिपादन होगा इस अनुच्छेद के अधीन प्रत्येक कानून की पर्याप्त रूप में परीक्षा की जायेगी और तदुपरान्त ही समवर्त्ती सूची में आये हुए किसी विषय से संबंधित कार्यपालक शक्ति केन्द्र को प्रदान की जायगी। सन् 1935 के अधिनियम के संबंध में संयुक्त सिलेक्ट कमेटी की रिपोर्ट में जो कुछ कहा गया है उसकी ओर मैं एक बार फिर सभा का ध्यान आकर्षित करता हूं। उन्होंने कहा है कि उनका यह विचार नहीं है कि धारा 126 (2) के अधीन कार्यपालक निदेश प्रान्तों की

[श्री टी.टी. कृष्णमाचारी]

इच्छाओं का विचार बिना किये दे दिये जायेंगे और ऐसा इसलिये न होगा क्योंकि ऐसा तो है नहीं कि केन्द्र का प्रान्तों से कोई संबंध ही न हो। भविष्य में भी केन्द्रीय विधान-मण्डल में प्रादेशिक इकाइयों के प्रतिनिधि ही तो होंगे। एक सभा में तो इकाइयों के विधान-मण्डलों के प्रतिनिधि होंगे। दूसरी सभा में इकाइयों की जनता के प्रतिनिधि होंगे। भविष्य में केन्द्र की सत्ता प्रान्तों अथवा अंगों से भिन्न तो होगी नहीं। इसलिये कोई कारण नहीं है कि उस विधान-मण्डल की नेकनियती के बारे में संदेह किया जाये और यह कहा जाये कि वह विधान-मण्डल केन्द्र को ऐसी शक्ति प्रदान कर देगा कि जिससे प्रान्तों की कार्य करने की स्वतन्त्रता बिल्कुल कम हो जायेगी।

श्रीमान्, जैसा कि मैंने पहले कहा था यह परन्तुक केन्द्र और प्रादेशिक अंगों के प्रकार्यों को ठीक-ठीक नियत कर देता है। और उस बारे में कोई असंदिग्धता नहीं रहेगी और न उत्तरदायित्व अब अस्पष्ट रहेगा मैं तो यही समझता हूं कि यह अनुच्छेद वास्तव में ठीक ही है और मुझे विश्वास है कि लोगों के अन्त:करण टटोलने के साथ मद्रास के मुस्लिम लीगी प्रतिनिधियों ने जो भूत दिखाया है कि ऐसा होने से शीघ्र ही तानाशाही राज्य कायम हो जायेगा, उससे सभा किसी प्रकार न घबड़ायेगी।

श्रीमान्, यह अनुच्छेद.....।

***बी. पोकर साहिब बहादुर:** क्या यह सत्य नहीं है कि ऐसे प्रसंगों पर दल की ओर से आदेश दिये जाते हैं?

***श्री टी.टी. कृष्णमाचारी:** अपने माननीय मित्र को उत्तर देने की मेरी इच्छा नहीं है। हो सकता है कि दल की ओर से आदेश दिये जाते हों। हम सब जानते हैं कि क्या होता है। और सच्चाई तो यह है कि यह सब तो सुविधा के लिये किया जाता है। यदि हम में से कुछ लोग इकट्ठे होकर उस काम को आपस में मिलकर न करें जो कि सभा के समक्ष आने वाला है तो मुझे इस बात का भय है कि सभा को तीन या चार वर्ष बैठना पड़ेगा। एक साथ मिलकर हम में से कुछ लोग, जो कि एक ही दल के लोग नहीं हैं बल्कि वे ऐसे हैं जो साथ साथ काम करने के लिये तत्पर हैं, एक साथ कार्य करने से यह बात संभव कर

रहे हैं कि देश का संविधान जल्द तैयार हो जाये। मैं यह बात तो समझ सकता हूं कि मेरे माननीय मित्र इस देश के लिये किसी संविधान को बनाना न चाहते हों। यदि यही उनका विचार हो तब तो वे जिस रीति से हम कार्य कर रहे हैं उस पर आपत्ति कर सकते हैं। श्रीमान्, मैं समझता हूं कि उनके ये सारे दोषारोप सारहीन हैं। उनके विरोध का आधार राजनैतिक है। इसका मूल कारण यह है कि मुस्लिम लीग यह कभी नहीं चाहती कि भारत शक्तिशाली देश हो और उसकी सरकार भी मजबूत हो। श्रीमान्, मुझे आशा है कि सभा इन समस्त थोथी धमकियों तथा इन सब दोषारोपणों पर ध्यान नहीं देगी और इस अनुच्छेद का समर्थन करेगी।

***माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकर** (बम्बई : जनरल): उपाध्यक्ष महोदय, मुझे खेद है कि इस परन्तुक पर जो दो संशोधन पेश किये गये हैं उनमें से मैं किसी को भी स्वीकार नहीं कर सकता। मैं सभा को संक्षेप में यह बताऊंगा कि मैं इन संशोधनों को क्यों स्वीकार नहीं कर सकता। ऐसा करने के पूर्व मैं यह वांछनीय समझता हूं कि सभा को इस बात से परिचित करा दूं कि इस परन्तुक में तथा इस पर जो दो संशोधन पेश किये गये हैं उनमें परस्पर ठीक-ठीक अन्तर क्या है। परन्तुक का वर्तमान रूप दो बातों का निर्धारण करता है। पहली बात यह है कि सामान्यतया समवत्ती कहे जाने वाले क्षेत्र से संबंधित कानूनों के संपादन करने का प्राधिकार, चाहे वे कानून केन्द्रीय विधान-मण्डल द्वारा पारित किये गये हों, चाहे प्रान्तीय अथवा राज्य विधान-मण्डल द्वारा पारित किये गये हों, साधारणतया प्रान्तों अथवा राज्यों का होगा। यह पहली बात है जिसे यह परादिक निर्धारित करता है दूसरी बात जिसे यह परादिक निर्धारित करता है, यह है कि यदि संसद् यह समझती है कि समवर्त्ती क्षेत्र से संबंधित कानून के पारण करने पर उसके संपादन का अधिकार केन्द्रीय सरकार को ही रहे तो संसद् को ऐसा करने का अधिकार होगा। अत: स्थिति यह है कि साधारणतया समस्त बातों में समवर्त्ती सूची से संबंधित कार्यपालक प्राधिकार प्रादेशिक इकाइयों अर्थात् प्रान्तों तथा राज्यों के हाथ में होंगे। केवल आपवादिक अवस्थाओं में ही केन्द्र यह विहित करेगा कि समवर्त्ती कानून पर कार्य कराने का अधिकार केन्द्र को होगा। जो संशोधन पेश किये गये हैं उनके आशय भिन्न-भिन्न हैं। पहला संशोधन यह है कि समवर्त्ती विषयों से संबंधित कानून को अमल में लाने में केन्द्र का कुछ

[माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकर]

भी हाथ नहीं होना चाहिये। दूसरा संशोधन, जिसे मेरे माननीय मित्र पंडित कुंजरू ने पेश किया है, यद्यपि वह भी इस बात की अनुमति नहीं देता है कि समवर्त्ती विषयों के संबंध में पारित कानून पर कार्य कराने का भार केन्द्र स्वयं अपने ऊपर ले। पर उससे इस बात की छूट तो हो ही जायेगी कि केन्द्र 25 तथा 37 पदों में उल्लिखित विषयों के संबंध में प्रान्तीय सरकारों को निदेश दे सके। दोनों संशोधनों में यही अन्तर है।

पहला संशोधन वास्तव में भारत शासन अधिनियम, 1935 में दी हुई वर्तमान स्थिति से बहुत परे है। माननीय सदस्यों को यह विदित ही है कि वर्तमान भारत शासन अधिनियम, 1935 में भी इस बात की अनुमति दी गई है कि केन्द्रीय सरकार प्रान्तों को कम से कम यह निदेश दे सके कि किस तरीके से किसी विशिष्ट कानून का संपालन किया जाये। मैं कहता हूं कि पहला संशोधन उस अधिकार को भी छीन लेता है जिसे भारतीय शासन अधिनियम, 1935 ने केन्द्र को दिया है। मेरे माननीय मित्र पंडित कुंजरू के संशोधन में यह इच्छा प्रकट की गई है कि भारत शासन अधिनियम, 1935 में दी हुई स्थिति को पुनः ग्रहण किया जाये।

***पं. हृदयनाथ कुंजरू:** मैं उससे कुछ थोड़ा आगे जाता हूं। मेरे संशोधन का दूसरा भाग भारत शासन अधिनियम के अधीन भारत सरकार जिस किसी शक्ति का भी उपभोग कर रही है उससे अधिक शक्ति प्राप्त कराता है।

***माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकर:** संभव है, ऐसा हो किन्तु मैंने स्थिति को वैसे ही बयान किया है जैसी कि मेरी समझ में वह है। श्रीमान्, अब मैं बड़े संशोधन पर, जो चाहता है कि केन्द्र को निदेश देने तक का भी अधिकार न हो, अपने विचार आपके सामने रखना चाहता हूं। इसके लिये मैं यह आवश्यक समझता हूं कि मैं इस विशेष विषय के इतिहास को आपके सामने रखूं। मैं यह बात केवल एक तथ्य के रूप में बिना किसी भेद-भाव के कहता हूं कि पहले संशोधन के पक्ष में बोलने वाले सदस्य अधिकतर मुसलमान हैं। उनमें से एक मेरे माननीय मित्र श्री पोकर ने समझा कि प्रत्येक सदस्य का यह पवित्र कर्त्तव्य है कि इस संशोधन का विरोध करे। मेरा विचार नहीं है.....।

***बी. पोकर साहिब बहादुरः** श्रीमान्, मैंने यह नहीं कहा है। मैंने केवल यही कहा था कि अन्तःकरण के अनुसार कार्य करना प्रत्येक सदस्य का कर्त्तव्य है।

***माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकरः** जिससे मैंने यह समझा कि प्रत्येक सदस्य जिसके अन्तःकरण है उसे इस परन्तुक का विरोध करना चाहिये। उनके कथन का और कोई अर्थ नहीं हो सकता। (*हंसी*)

***बी. पोकर साहिब बहादुरः** कभी नहीं।

***माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकरः** श्रीमान्, जैसा कि मैंने कहा था इस परन्तुक पर मुसलमान सदस्यों के इस विचित्र प्रदर्शन के पीछे एक इतिहास है, और मुझे खेद के साथ यह कहना पड़ता है कि मेरे माननीय मित्र श्री कुंजरू उस इतिहास को बिल्कुल ही भूल गये हैं साथ ही इस बात में मुझे कुछ भी सन्देह नहीं है कि वे इस इतिहास से इतने ही परिचित हैं जितना कि मैं।

यह विषय उस गोलमेज सम्मेलन तक से संबंध रखता है जो सन् 1930 ई. में हुई थी। सन् 1930 ई. के गोलमेज सम्मेलन में जो कुछ हुआ उससे तो लोग परिचित हैं। उनमें से प्रत्येक को यह याद होगा कि उस सम्मेलन में जिन दो प्रमुख दलों का प्रतिनिधान हुआ था अर्थात् मुस्लिम लीग और भारत राष्ट्रीय कांग्रेस। उनमें अनेकों वैधानिक महत्त्व के प्रश्नों पर परस्पर मतभेद था।

एक प्रश्न जिस पर उनमें परस्पर मतभेद था वह प्रान्तीय स्वायत्त-शासन का विषय था। इस सच्चाई को तो सब लोग समझते थे कि जो संविधान विधि और प्रशासन के क्षेत्रों में भारत की एकता को कायम रखने के लिये बनाया गया हो उसके द्वारा प्रान्तों को पूर्णरूपेण स्वतंत्रता नहीं दी जा सकती। किन्तु इस बारे में मुस्लिम लीग ने ऐसी हठ पकड़ी कि भारत मंत्री को इस बात के लिये मजबूर हो जाना पड़ा कि वह कुछ ऐसी रियायतें मुस्लिम लीग को दे जिनसे खुश होकर वह केन्द्र में किसी न किसी प्रकार के उत्तरदायी शासन की स्थापना के लिए राजी हो जाये। और रियायतों के साथ-साथ उसने एक यह भी रियायत दी कि उसने भारत शासन अधिनियम की धारा 126 में यह खंड भी शामिल करा दिया कि समवर्त्ती सूची में प्रगणित विषयों के बारे में विधान बनाने के संबंध में

[माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकर]

केन्द्रीय सरकार को केवल इतनी शक्ति होगी कि वह उनके अधीन इकाइयों को निदेश तो दे सकेगी किन्तु उन विषयों का प्रशासन स्वयं अपने द्वारा न कर सकेगी। तर्क यह था कि यदि केन्द्रीय सरकार में हिन्दुओं के आधिपत्य की संभावना न होती तो समवर्त्ती क्षेत्र में किसी विशिष्ट कानून के बारे में केन्द्र द्वारा स्वयं कार्यान्वित करने में मुस्लिम लीग की कोई आपत्ति न होती। मुझे याद है कि गोलमेज सम्मेलन के विवाद में यह बात बहुत ही स्पष्ट रूप में कही गई थी कि भारत मंत्री को यह रियायत इसलिए करनी पड़ी थी कि क्योंकि उत्तर पश्चिमी सीमाप्रान्त, पंजाब, बंगाल और कुछ हद तक आसाम जैसे मुस्लिम बहुल प्रान्तों की मुस्लिम लीगी सरकारें यह नहीं चाहती थीं कि इस प्रकार का हस्तक्षेप केन्द्र उन क्षेत्रों में भी करे जिनको कि वह बिल्कुल अपने अधिकार के अन्तर्गत ही समझती थीं। मुझे इसमें कुछ भी सन्देह नहीं है कि यह एक रियायत मात्र थी। यह बात सिद्धान्त के रूप में स्वीकार नहीं की गई थी कि समवर्त्ती विषयों के संबंध में बनाये गये कानून को अमल में लाने के लिये केन्द्र को लेशमात्र भी अधिकार न होगा। अतः मेरा निवेदन यह है कि भारत शासन अधिनियम 1935 के अधिनियम की धारा 126 में इस बारे में जो विधान रखा गया है वह सिद्धान्त की दृष्टि से उचित नहीं ठहराया जा सकता। उसका औचित्य केवल इसी दृष्टि से है कि वह मुसलमानों के लिये एक रियायत है। अतः इस संशोधन के पक्ष में जो तर्क दिये गये हैं उनको धारा 126 के प्रावधानों की दुहाई देकर ठीक बताना उचित नहीं है।

श्रीमान्, इस बात को, कि भारत शासन अधिनियम, 1935 की धारा 126 से इस बारे में जो व्यवस्था की गई थी वह अन्ततः ठीक नहीं थी। इस सच्चाई को भारत मंत्री ने युद्ध की घोषणा होने के पूर्व बनाये गये कानून के सिलसिले में स्वीकार किया था। माननीय सदस्यों को यह याद होगा कि युद्ध की घोषणा होने के पूर्व संसद् ने धारा 126 की एक सहायक धारा 126-क बनाई थी। संसद् ने धारा 126-क का बनाना आवश्यक क्यों समझा? आपको यह स्मरण होगा कि जहां तक समवर्त्ती कानून का संबंध है भारत शासन अधिनियम की धारा 126-क ऐसी धारा है जिसका असर बहुत से क्षेत्रों पर पड़ता है उससे केवल प्रान्तीय विषयों पर ही कानून बनाने की शक्ति ही केन्द्र को नहीं मिलती वरन् प्रान्तीय तथा समवर्त्ती विषयों के बारे में प्रशासन को अपने अधिकार में लेने की शक्ति भी केन्द्र को उससे मिल जाती है। यह इसलिये बनाई गई थी कि भारत मंत्री

को ऐसा प्रतीत हुआ कि युद्धकाल में देश के प्रशासन के लिये धारा 126 पूर्णतया घातक सिद्ध होगी। अत: मेरा निवेदन यह है कि धारा 126-क जो संकट काल के लिये बनायी गयी थी केवल संकट काल में ही प्रयोज्य नहीं है वरन् सामान्यस्थिति तथा सामान्य काल में भी प्रयोज्य है। अत: सभा से मेरा पहला निवेदन यह है कि जिन परिस्थितियों का मैंने उल्लेख किया है उनके कारण धारा 126 की दुहाई देकर किसी भी तर्क का समर्थन नहीं किया जा सकता।

परन्तुक पर विचार करते हुए.....।

***बी. पोकर साहिब बहादुर:** श्रीमान् आपकी अनुमति से क्या मैं अपने विद्वान् मित्र के भ्रमों का निवारण कर सकता हूं? यह विधान वर्तमान भारतीय संघ के लिये बनाया जा रहा है जिसमें कोई भी ऐसा प्रान्त नहीं है जिसमें मुसलमान बहुसंख्या में हों। अत: इस कथन में कोई भी सार नहीं है कि मुस्लिम लीग के हितों के लिये ही मुसलमान सदस्य इस संशोधन को पेश कर रहे हैं। यह बहुत ही भ्रमात्मक तर्क है और एक भ्रम पर आश्रित है। माननीय कानून मंत्री इस बात को भूल जाते हैं कि वर्तमान भारतीय संघ में हम मुसलमानों को इस संशोधन से कोई भी विशिष्ट लाभ नहीं होगा।

***माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकर:** यद्यपि यह बात सच है और मैं इसे स्वीकार करता हूं, मैं अभी-अभी इतना ही कहने वाला था कि मेरी शिकायत केवल इतनी है कि मुसलमान सदस्यों ने अभी तक मुस्लिम लीग के दृष्टिकोण को नहीं छोड़ा है जिसे उन्हें त्याग देना चाहिये था। वे उन्हीं तर्कों को दोहरा रहे हैं जो उस समय तक ठीक थे जब तक कि यहां मुस्लिम लीग थी और मुसलमान प्रान्त थे। अब वे ठीक नहीं हैं। मैं नहीं समझ पाता हूं कि मुसलमान अब उन्हें क्यों दोहरा रहे हैं। (*बाधायें*)

***उपाध्यक्ष:** शान्ति, शान्ति।

***माननीय डॉ. बी. आर. अम्बेडकर:** मैं यह कह रहा था कि इस तर्क में कोई सार नहीं है कि हम भारत शासन अधिनियम की धारा 126 में दिए हुऐ प्रावधानों से पीछे हट रहे हैं। जैसा कि मैं कह चुका हूं वह धारा किसी भी सिद्धान्त पर आश्रित नहीं है। परन्तुक के पक्ष में मैं दो बातें कहूंगा। पहली बात यह है कि इस परन्तुक में विहित सिद्धान्त के पक्ष में हमें पहले और देशों के प्रमाण भी हैं जिन देशों में संघानीय संविधान चालू हैं। उनमें इस बारे में पाई जाने

[माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकर]

वाली स्थिति की पूरी व्याख्या मेरे मित्र टी.टी. कृष्णमाचारी ने कर दी है। अत: इस विषय के संबंध में मैं कुछ कहना नहीं चाहता। परन्तु आस्ट्रेलिया के संविधान से मैं एक उदाहरण दे देता हूं। आस्ट्रेलिया के संविधान में भी ऐसे समवर्त्ती विषय हैं जिनके बारे में संघ और राज्य की सरकारें कानून बना सकती हैं। आस्ट्रेलिया के संविधान के अन्तर्गत कामनवेल्थ पार्लियामेंट को यह अधिकार है कि वह समवर्त्ती विषय के लिये अमल कराने का कोई अधिकार बनाते समय यह भी विधान कर दे कि उस कानून पर एक महान् स्मृतिज्ञ श्री वाईन्स द्वारा "आस्ट्रेलिया में विधायी तथा अधिशासी शक्तियां" नामक एक प्रसिद्ध पुस्तक में से मैं एक छोटी-सी कंडिका आपको पढ़कर सुनाता हूं। वे यह कहते हैं:

> "कामनवेल्थ के कानूनों का हम अन्त में जिक्र कर सकते हैं। लेफ्राय का कहना है कि यदि किसी कानून से इस बारे में कोई बाधा या प्रतिबन्ध न लगा दिया गया हो तो आमतौर से कार्यपालिका शक्ति विधायी शक्ति से निकली हुई मानी जाती है किन्तु यह बात कनाडा के लिये ठीक-ठीक कही जा सकती है। जहां विषयों को अलग गिना दिया गया है। और उस कारण केन्द्रीय और प्रान्तीय सरकारों को अपनी अलग-अलग विधायी शक्तियां मिली हुई हैं। किन्तु यह आस्ट्रेलिया के लिये ठीक नहीं है। जिन विषयों के बारे में वहां कामनवेल्थ को अनन्य शक्तियां मिली हुई हैं मसलन प्रतिरक्षा के बारे में उन विषयों के बारे में अनुदान करने की कार्यपालिका शक्ति कामनवेल्थ में निहित है। किन्तु समवर्त्ती शक्तियों के बारे में यह नियम है कि उन पर अमल करने का अधिकार आम-तौर पर राज्यों में तब तक निहित रहता है जब तक कि उनके बारे में कामनवेल्थ अपनी विधि नहीं बनाती।"

इसका यह अर्थ है कि समवर्त्ती क्षेत्र में कार्यपालन प्राधिकार तब तक राज्यों के होते हैं जब तक कि कामनवेल्थ कानून बनाने की अपनी शक्ति का प्रयोग नहीं करती। जिस समय भी वह ऐसा करती है उसी समय कानून पर अमल कराने की शक्ति कामनवेल्थ को स्वयं हो जाती है। अत: इस परन्तुक में निर्धारित स्थिति की आस्ट्रेलिया में वर्तमान स्थिति से तुलना करने पर मैं निवेदन कर सकता हूं कि हम किसी भी संघानीय सिद्धान्त का जिसको कि कोई उद्धृत कर

सकता है, किसी प्रकार से भी उल्लंघन नहीं कर रहे हैं। श्रीमान्, मेरा दूसरा निवेदन है इस परन्तुक के लिये जिससे केन्द्र को यह अधिकार मिलता है कि वह किसी विशेष अवस्था में समवर्त्ती सूची में दिये गये विषयों के संबंध में बने कानूनों पर अमल कराने की शक्ति अपने हाथ में ले ले, हमारे पास पर्याप्त कारण हैं। इस बारे में मैं आपको एक या दो उदाहरण देता हूं। संविधान परिषद् ने अनुच्छेद 11 स्वीकार कर लिया है जो अस्पृश्यता का अन्त करता है। वह संसद् को अस्पृश्यता के अन्त को सार्थक बनाने के लिये उपयुक्त कानून पारित करने का भी अधिकार देता है। मान लीजिये कि अछूतों को अपने नागरिक अधिकारों के प्रयोग करने में बाधा डालने पर अभियोग और कुछ दण्ड विहित करने वाले कानून का केन्द्र निर्माण करता है। मान लीजिये कि ऐसा कोई कानून बना दिया जाता है और मान लीजिये कि किसी विशेष प्रान्त में अस्पृश्यता के अन्त करने के पक्ष में उतनी पवित्र तथा प्रबल भावनायें नहीं हैं और न सरकार की ही यह इच्छा है कि अछूतों के लिये जिन नागरिक अधिकारों की प्रत्याभूति संविधान देता है वे उनको मिलें तो क्या यह बात तर्कसंगत तथा उचित होगी कि अस्पृश्यता के विषय में जिस केन्द्र पर संविधान द्वारा इतना उत्तरदायित्व लादा गया है वह केवल कानून पारित कर दे और हाथ बांधे यह देखता तथा प्रतीक्षा करता रहे कि उन सब विशिष्ट कानूनों पर अमल कराने के विषय में प्रान्तीय सरकारें क्या कर रही हैं? क्या उस केन्द्र को जो इस प्रकार का कानून बनाता है उस पर अमल कराने का प्राधिकार नहीं होना चाहिये? यदि कोई ऐसा व्यक्ति है जो यह कह सकता है कि इतने महत्व के विषय पर केन्द्र कानून बनाने के अतिरिक्त और कुछ न करे तो मैं उसे जानना चाहूंगा।

मैं आपके सामने एक उदाहरण और दे दूं। हमारे देश में बाल विवाह की प्रथा है जिसके विरुद्ध बहुत प्रचार हुआ है और बहुत कोलाहल हुआ है केन्द्र द्वारा कानून पारित कर दिये गये हैं। उन पर अमल कराना प्रान्तों पर छोड़ दिया गया है। हम सब जानते हैं कि एक सरकार में विधायी प्राधिकार निहित होने से और दूसरी सरकार में कार्यपालक प्राधिकार निहित होने से क्या नतीजा हुआ है। मैं समझता हूं (और मैं विचार करता हूं कि मेरे मित्र पंडित ठाकुरदास भार्गव जो इस विषय के कट्टर समर्थक रहे हैं इस बात को सभा में सदैव कहते रहे हैं) कि कानून के होते हुए भी देश में बाल विवाह उसी प्रकार से होते हैं जिस प्रकार

[माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकर]

से कि वे पहले होते थे। क्या यह वांछनीय नहीं है कि केन्द्र जो कि इन दोषों के निवारण करने में बहुत ही रुचि रखता है उसे इस प्रकार के कानूनों पर अमल कराने का कुछ भी प्राधिकार न हो? क्या वह प्रान्तों को यह स्वतन्त्रता दे दे कि वे जिन कानूनों को संसद् ने बड़ी लग्न तथा उत्कण्ठा से अमल में लाये जाने के लिये बनाया है, उनके बारे में प्रान्त चाहे जो कुछ करें एक और उदाहरण है। कारखानों से संबंधित कानून को लीजिये। मुझे अच्छी तरह याद है कि जब मैं भारतीय सरकार का श्रम मंत्री था उस समय अनेकों ऐसे मामले आते थे जिनमें यह शिकायत की जाती थी कि कोई भी प्रान्त अथवा अधिकतर प्रान्त यह देखने के लिये कि कारखाने संबंधी कानूनों पर उचित रूप में अमल किया जाता है कारखाने में निरीक्षक नियुक्त करने के लिये उद्यत नहीं हैं। क्या यह वांछनीय है कि केन्द्रीय सरकार के श्रम संबंधी कानून केवल कागजी कानून रहें और उन पर कोई अमल न किया जाय? जब तक केन्द्र को अपने बनाये हुए कानूनों को अमल में लाने का अधिकार न हो तब तक उन कानूनों को किस प्रकार प्रभावी किया जा सकता है?

अत: जिन उदाहरणों को मैंने आपके सामने प्रस्तुत किया है उनको ध्यान में रख कर—और मुझे इस बात में कोई संदेह नहीं है कि अपने अनुभव के आधार पर माननीय सदस्यों को और भी अनेकों उदाहरण याद होंगे—मैं निवेदन करता हूं कि समवर्त्ती क्षेत्र में केन्द्र के बनाये हुए कानून का एक बड़ा भाग केवल इस कारण कागजी कानून ही बना रहता है कि केन्द्र अपने कानूनों पर स्वयं अमल नहीं करा सकता। मैं समझता हूं कि यह परिस्थिति बहुत खराब है और हमें उस से मुक्त होना चाहिये। यह परन्तुक इसी बात का प्रयत्न करता है।

एक और बात है जिसका मैं उल्लेख करना चाहता हूं और वह यह है। सच बात तो यह है कि प्रांतीय सरकारों को इस परन्तुक का स्वागत करना चाहिये क्योंकि आजकल एक प्रकार की आर्थिक अव्यवस्था फैली हुई है। केन्द्र के कानून बनाने और उन पर अमल कराने को प्रान्तों पर छोड़ देने का यह अर्थ होगा, प्रान्तों पर कुछ आर्थिक भार का लादना जिसकी आवश्यकता उन कानूनों के पालन करने के लिये तन्त्र की नियुक्ति में होती है। इस परन्तुक के कारण आर्थिक भार से प्रान्त मुक्त हो जायेंगे और इसीलिये मैंने सोचा कि इस परन्तुक का एक ऐसे अपर अनुदान के रूप से स्वागत होगा जिसकी प्रान्तों को बड़ी

आवश्यकता है। अतः श्रीमान्, मैं निवेदन करता हूं कि जो तर्क मैंने प्रस्तुत किये हैं उनसे प्रत्यक्ष है कि इस परन्तुक में वह सिद्धान्त निहित है जिसको अपनाना कल्याणकारी होगा।

***उपाध्यक्षः** अब मैं संशोधनों पर मत लूंगा। प्रस्ताव यह है:

"कि संशोधनों की सूची में संशोधन संख्या 1289 के प्रसंग में अनुच्छेद 60 के खण्ड (1) के उपखण्ड (क) में 'Parliament has' (विधि बनाने की) और 'Power' (शक्ति) शब्दों के मध्य 'exclusive' (अनन्य) शब्द प्रविष्ट किया जाये।"

संशोधन अस्वीकार किया गया।

***उपाध्यक्षः** प्रस्ताव यह है:

"कि संशोधन संख्या 1289 के प्रसंग में अनुच्छेद 60 के खण्ड (1) के परन्तुक में से 'or any law made by Parliament' (अथवा संसद् द्वारा निर्मित किसी विधि में) शब्द निकाल दिये जायें।"

संशोधन अस्वीकार किया गया।

***उपाध्यक्षः** प्रस्ताव यह है:

"कि संशोधन संख्या 1289 के प्रसंग में अनुच्छेद 60 के खण्ड (1) के पश्चात् निम्न खण्ड प्रविष्ट किया जाये:

'(1a) Any power of Parliament to make laws for a State with respect to any matter specified in entries 25 to 37 of the Concurrent List shall include power to make laws as respects a State conferring powers and imposing, duties, or authorising the conferring of powers and the imposition of duties upon the Government of India or officers and authorities of the Government of India as respects that matter, notwithstanding that it is one with respect to which the Legislature of the State also has power to make laws.' "

[(1क) समवर्त्ती सूची की 25 से 37 प्रविष्टियों में उल्लिखित किसी विषय के संबंध में किसी राज्य के लिये कानून बनाने की संसद् की किसी

[उपाध्यक्ष]

शक्ति में किसी राज्य के संबंध में भारतीय सरकार अथवा अधिकारियों तथा भारतीय सरकार के प्राधिकारियों को उस विषय से संबंधित शक्तियां प्रदान करने तथा कर लगाने के प्राधिकार देने की शक्ति निहित है चाहे उस विषय के संबंध में कानून बनाने की शक्ति उस राज्य के विधान-मण्डल को भी क्यों न हो।]"

संशोधन अस्वीकार किया गया।

***उपाध्यक्ष:** प्रस्ताव यह है:

"कि अनुच्छेद के खण्ड (1) के परन्तुक को निकाल दिया जाये।"

संशोधन अस्वीकार किया गया।

***उपाध्यक्ष:** प्रस्ताव यह है:

"कि अनुच्छेद 60 विधान का भाग बने।"

प्रस्ताव स्वीकार किया गया।

अनुच्छेद 60 विधान में प्रविष्ट किया गया।

अनुच्छेद 61

***उपाध्यक्ष:** सभा के समक्ष यह प्रस्ताव है:

"कि अनुच्छेद 61 विधान का अंग बने।"

संख्या 1294 पर श्री बेग का प्रथम संशोधन पेश किया जा सकता है।

***महबूब अली बेग साहिब बहादुर** (मद्रास : मुस्लिम): उपाध्यक्ष, मैं प्रस्ताव पेश करता हूं:

"कि अनुच्छेद 61 के वर्तमान खंड (1) के स्थान में निम्न खण्ड रखे जायें:

'1(a) There shall be a Council of Ministers to aid and advise the President in the exercise of his functions,

(b) The Council shall consist of fifteen ministers elected by the elected members of both the Houses of

Parliament from among themselves in accordance with the system of proportional representation by means of a single transferable vote, and one of the ministers shall be elected as Prime Minister, in like manner.' "

[1(क) राष्ट्रपति को अपने प्रकार्यों का पालन करने में सहायता तथा मंत्रणा देने के लिये एक मंत्रिपरिषद् होगी।

(ख) परिषद् में अनुपाती प्रतिनिधान की प्रणाली के अनुसार एकल-संक्राम्य मत द्वारा संसद् के दोनों आगारों के निर्वाचित सदस्यों द्वारा उन्हीं सदस्यों में से निर्वाचित पन्द्रह मंत्री होंगे और इसी रीति से उन मंत्रियों में से एक को प्रधान मंत्री निर्वाचित किया जायेगा।]

श्रीमान्, इस संशोधन को पेश करने का प्रथम आशय यह है कि कार्यपालक मंडल में अर्थात् मंत्रिमंडल में उचित प्रतिनिधि ही शामिल हो सकें।

और दूसरा आशय यह है कि जनता के विभिन्न भागों को भी उसमें प्रतिनिधित्व मिले। इस संविधान के मसौदे में मंत्रिमंडल में मंत्री नियुक्त करने की जो रीति प्रस्तुत की गई है और पहले जैसी प्रथा भारत शासन अधिनियम, 1935 के अन्तर्गत अथवा उससे भी पूर्व रही है वह यह है कि जिस राजनैतिक दल का बहुमत द्वारा निर्वाचन होता है उसके नेता को गवर्नर अथवा गवर्नर जनरल द्वारा जैसी भी दशा हो, आमंत्रित किया जाता है और उससे मंत्रिमंडल बनाने के लिये कहा जाता है और वह यह तय करता है कि मंत्रिमण्डल में उसके साथी मंत्री और कौन होंगे। अतीत काल की यही प्रथा है और इस संविधान में भी यही रीति प्रस्तुत की गई है और यही प्रथा संसदात्मक प्रजातंत्र कही जाने वाली सरकार के स्वरूप के अनुरूप है। किन्तु मैं प्रजातंत्र का वह अर्थ नहीं लगाता जो वे लोग लगाते हैं जो संसदात्मक प्रणाली की सरकार को प्रजातन्त्र का सच्चा रूप मानते हैं। मेरे विचारानुसार संसदात्मक प्रजातन्त्र प्रजातन्त्र है ही नहीं। मेरे विचारानुसार केवल बहुसंख्यकों द्वारा शासन ही प्रजातन्त्र नहीं है वरन् प्रजातन्त्र वहां है जहां उचित विचार-विमर्श द्वारा, किसी विशेष विषय पर विचार-विमर्श की उचित रीति द्वारा, और जनता के समस्त विभागों के हितों को ध्यान में रख कर निश्चय किये जाते हैं। अब यह देखिये के मंत्रिमण्डल के बनाते समय वास्तव में होता क्या है। उदाहरण के लिये एक ऐसी संसद् का उदाहरण लीजिये जिसमें 200 सदस्य हों। यदि किसी विशेष दल के 105 सदस्य निर्वाचित हो गये हों तो उन 105 में से एक सदस्य नेता निर्वाचित किया जाता है और यदि उसका

[महबूबअली बेग साहिब बहादुर]

निर्वाचन केवल 60 सदस्यों के बहुमत द्वारा किया गया हो तो उसको राष्ट्रपति आमन्त्रित करता है और मन्त्रिमण्डल बनाने के लिये कहता है। अर्थात् 200 सदस्यों में से जिस व्यक्ति को 60 मत मिले हैं उसको राष्ट्रपति मंत्रिमण्डल बनाने के लिये आमन्त्रित करता है और वह प्रधान मन्त्री बनता है और यह प्रधान मन्त्री अपने दल की सम्मति तथा इच्छा के बिना अथवा संसद् के सदस्यों की सम्मति लिये बिना अपने मन्त्रियों को चुनता है। वह अपने मित्रों को चुन सकता है। कभी-कभी वह वास्तव में बड़ी कठिनाई में पड़ जाता है। यदि वह किसी व्यक्ति को अपने मन्त्री के रूप में चुनता है तो अन्य उसके विरुद्ध हो जाते हैं। पर उसे तो चुनने का अधिकार है ही। अतः फल यह होता है.....।

***श्री एच.वी. कामत** (मध्यप्रान्त और बरार : जनरल): श्रीमान्, एक औचित्य प्रश्न है। श्री बेग द्वारा प्रेषित संशोधन का दूसरा भाग प्रधान मंत्री की नियुक्ति के संबंध में है जो अनुच्छेद 62 का विषय है। अतः अनुच्छेद 61 के संशोधन के रूप में यह संशोधन पेश नहीं किया जा सकता।

***उपाध्यक्षः** मैं समझता हूं कि एक दूसरा संशोधन है, ठीक जिससे आपकी आपत्ति पूरी हो जाती है।

***महबूब अली बेग साहिब बहादुरः** अतः श्रीमान्, विधान के मसौदे के अनुसार वह व्यक्ति जिसे सभा के 200 सदस्यों में से 60 का समर्थन प्राप्त होता है·····।

***उपाध्यक्षः** श्री कामत, कृपया श्री बेग के नाम के संशोधन संख्या 1302 को देखें और आपको अपनी आपत्ति का समुचित उत्तर मिल जायेगा।

***महबूब अली बेग साहिब बहादुरः** उसको मंत्रिमण्डल बनाने के लिये आमन्त्रित किया जाता है। वह किसी व्यक्ति को अपना मन्त्री चुन सकता है जो समस्त सभा की सम्मति तो क्या स्वयं उसके दल की सम्मति में भी मंत्रिपद के लिये उपयुक्त व्यक्ति न हो। अतः मेरा निवेदन यह है कि देश पर शासन करने के लिये इस प्रकार के कार्यपालक मंडल की नियुक्ति चाहे और कैसी ही क्यों न कही जा सकती हो किन्तु प्रजातन्त्रात्मक तो हर्गिज कही जा सकती ही नहीं। जैसा कि मैं कह चुका हूं कि 200 सदस्यों की पूरी सभा द्वारा उनका निर्वाचन

नहीं होता इतना ही क्यों नेता जिसको प्रधान मंत्री कहा जाता है उसका निर्वाचन भी सभा के बहुमत द्वारा नहीं होता और मंत्रिमण्डल के अन्य सदस्यों को भी लोक द्वारा नहीं चुना जाता।

यह कहा जा सकता है कि चूंकि बहुमत ने दल को चुना है अतः नेता को अपने आदमियों को ही मंत्रिमण्डल में रखने का हक है। श्रीमान्, मेरा निवेदन है कि यह केवल एक कानूनी कल्पना है जिसके आधार पर मन्त्रिमण्डल के सदस्यों को चुना जाता है। ऐसा हो सकता है कि यदि व्यक्तिगत रूप में इन मंत्रियों का निर्वाचन किया जाये तो वे बिल्कुल ही न चुने जायें। तो क्या हम इन मन्त्रियों को लोक-मंत्री कह सकते हैं? क्या हम यह कह सकते हैं कि इनका निर्वाचन प्रजातन्त्रात्मक रीति से हुआ है, इनकी नियुक्ति प्रजातन्त्रात्मक ढंग से हुई है? कदापि नहीं। केवल कानूनी कल्पना के आधार पर वे यहां हैं। अतः मेरा निवेदन है कि यह प्रजातन्त्रात्मक ढंग नहीं है।

फिर भी यह कहा जाता है कि संसदात्मक प्रजातंत्र इंग्लैंड तथा अन्य देशों में सफल हुआ है इत्यादि, इत्यादि। मेरा निवेदन यह है कि मैं इस कथन से बिल्कुल ही सहमत नहीं हूं कि यह संसदात्मक पद्धति प्रजातन्त्रात्मक है। श्रीमान्, मुझे तो बड़ी हंसी भी आती है और चिन्ता भी होती है जब मैं लोगों का यह कथन सुनता हूं कि राजनैतिक दलों पर आश्रित संसदात्मक प्रजातन्त्र ही सर्वोत्तम प्रजातन्त्र है। मेरा कहना तो यह है कि इस प्रकार का प्रजातन्त्र जो कि संसदात्मक प्रजातन्त्र के नाम से प्रसिद्ध हो रहा है प्रजातन्त्रात्मक होने से कोसों दूर है और विशेष कर यूरोप के शासन में आन्तरिक परिवर्तन तथा आन्तरिक क्रान्ति की समस्त बुराइयां तथा दोष इन राजनैतिक दलों के ही पैदा हुए कारण हैं–एक राजनैतिक दल शक्ति सम्पन्न होता है तो दूसरा उसे गिराने का प्रयत्न करता है। वहां यही हो रहा है। क्या बिना दलों के, बिना राजनैतिक दलों के, हम प्रजातन्त्र प्राप्त कर सकते हैं? भविष्य की राजनीति की मेरी कल्पना विचार दल विहीन राजनीति से है.....।

***एक माननीय सदस्यः** साम्प्रदायिक दलों से।

***महबूब अली बेग साहिब बहादुरः** कदापि नहीं, श्रीमान्, आप गलती पर हैं। उस विचार से भयभीत न हों। जितना शीघ्र आप उससे मुक्त हों उतना ही अच्छा।

***उपाध्यक्षः** श्री बेग, कृपया अध्यक्ष को संबोधन करिये।

***महबूब अली बेग साहिब बहादुरः** मैं आपको संबोधित कर रहा हूं, श्रीमान्। हमारे कुछ मित्रों की यह प्रवृत्ति है कि जब कोई उनके धर्म से पृथक् धर्म का अनुयायी बोलता है तो वे बाधा देते हैं। यह दुर्भाग्य की बात है। मैं उस विचार का प्रतिपादन कर रहा हूं कि हम दल विहीन राजनीति अपनायें।

***श्री अलगूराय शास्त्री** (संयुक्तप्रान्त : जनरल): यह संकीर्ण विचार युक्त दलाश्रित राजनीति है जिसका आप प्रतिपादन कर रहे हैं।

***महबूब अली बेग साहिब बहादुरः** यदि मेरे मित्र उदाहरण चाहते हैं तो मैं उनको स्विट्जरलैंड का उदाहरण दे सकता हूं। उस देश में राजनैतिक दलों का निर्वाचन नहीं होता है। वहां संसद् के सदस्यों का निर्वाचन होने के पश्चात् वे अपने मंत्रिमण्डल के मंत्रियों का निर्वाचन करते हैं। वहां यही हो रहा है और विगत अनेकों शताब्दियों से उस देश में कोई क्रान्ति नहीं हुई। वहां ऐसा कभी नहीं हुआ कि एक दल शक्ति सम्पन्न हो और वह दूसरे दल को सताये या कष्ट पहुंचाये तथा अन्य ऐसी ही बातें वहां नहीं हुई।

अतीतकाल में प्रजातन्त्र की क्या कल्पना थी? उस समय राजनैतिक दल मंत्रिमण्डल नहीं बनाते थे। दल विहीन राजनीति की प्रचुरता थी और जनता के समस्त विभागों में से सर्वोत्तम व्यक्तियों को चुना जाता था। वे संसद् में जाते थे और संसद् के ये सदस्य स्वयं अपने शासकों अथवा कार्यपालक मण्डलों को चुनते थे।

श्रीमान्, शक्ति सम्पन्न दल से किसी अन्य राजनैतिक दल के सदस्य क्यों भयभीत हैं? इसीलिये कि प्रत्येक राजनैतिक दल शक्ति बनाये रखने के लिये प्रयत्नशील है और जब उसके हाथ में शक्ति होती है तो वह अन्य दलों को सताने तथा दबाने में उस शक्ति का प्रयोग करता है। ऐसी बात नहीं होनी चाहिये। हमें केवल उसी राजनैतिक दल को रखना चाहिये जो देश के कल्याणार्थ कार्य करता है। यदि हमारे प्रतिनिधि जिनको विधान-मण्डलों व संसद् में भेजा जाता है वे सब साथ बैठकर यह विचार करें कि प्रजातन्त्र की उत्तमोत्तम रीति क्या है और ऐसे कानून बनाये जो लोगों के लिये लाभदायक हों चाहे वे राष्ट्रीयकरण के लिये हों अथवा अन्य किसी प्रयोजन के लिये; तो मैं पूछता हूं कि राजनैतिक दलों की क्या आवश्यकता है?

***पंडित ठाकुरदास भार्गव** (पूर्वी पंजाब : जनरल): आप सामूहिक उत्तरदायित्व का किस प्रकार सुनिश्चयन करेंगे?

***श्री अलगूराय शास्त्री:** प्रश्न तो यही है कि आप सामूहिक उत्तरदायित्व का किस प्रकार सुनिश्चयन करेंगे?

***महबूब अली बेग साहिब बहादुर:** जब राजनैतिक दल नहीं होंगे तो जो मंत्रिमण्डल चुना जायेगा वह किसी राजनीति से संबंध रखने वाला नहीं होगा और उन लोगों के समक्ष केवल देश कल्याण का ही उद्देश्य होगा और इस प्रयोजन के लिये उनमें परस्पर सहयोग होगा। मेरा ऐसा विचार है। अत: जैसा कि मैंने निवेदन किया था कि जिस वर्तमान रीति से प्रधान मंत्री और मंत्रिमंडल के सदस्य चुने जाते हैं उसको प्रजातन्त्रात्मक नहीं कहा जा सकता क्योंकि प्रधान मंत्री के चुनने में सबका हाथ नहीं होता है। स्वयं उनके दल के व्यक्तियों को चुनने का अधिकार होता है और उस दल में भी यदि अपने विरोधी से नेता को केवल एक मत भी अधिक मिल जाता है तो वह नेता हो जाता है और फिर वही मंत्रिमण्डल के सदस्य चुनता है। अत: मंत्रिमंडल के इन मंत्रियों की नियुक्ति प्रजातंत्रात्मक नहीं है और न उसको किसी भी रूप में प्रजातन्त्रात्मक कहा ही जा सकता है। यह पहली बात है जिस पर मैं जोर देना चाहता हूं।

दूसरी बात जिसे मैं स्वयं सोच रहा हूं वह यह है कि हम उन समस्त घबराहटों और कष्टों से किस प्रकार मुक्त हों जो राजनैतिक दलों के कारण, जैसे कि साम्यवादी दल, समाजवादी दल, प्रजातन्त्रात्मक समाजवादी दल, इस संसार के देशों में पाये जाते हैं। ये समस्त दल अपनी-अपनी सत्ता स्थापित कर लेते हैं और प्रत्येक दल का अपना कार्यक्रम होता है और जो दल शक्ति सम्पन्न हो जाता है वही अन्य दलों को दबाता और सताता है। इन सब बातों की आवश्यकता नहीं है। प्रत्येक दल अथवा समुदाय इस बात की घोषणा करता है कि देश के लिये उसका कार्यक्रम सर्वोत्तम है। परन्तु जब उद्देश्य अच्छा है और देश के कल्याण के हित में है तो लोगों में परस्पर किसी प्रकार के विभाजन की और अपने आप को समाजवादी दल के सदस्य, प्रजातंत्रात्मक समाजवादी दल, साम्यवादी दल के सदस्य कहने की क्या कोई आवश्यकता ही न होगी? अत: इस दृष्टिकोण से मैं एक ऐसी वस्तुस्थिति की कल्पना कर रहा हूं जिसमें जनता

[महबूब अली बेग साहिब बहादुर]

द्वारा भेजे हुए सदस्य अपने लोगों को चुनें और विधान-मंडलों में उनका निर्वाचन करें। यह प्रजातन्त्रात्मक रीति है।

अत: मैं निवेदन करता हूं कि मेरे दृष्टिकोण पर उचित विचार किया जाये और मैं आशा करता हूं कि सदस्यगण इतने अनुदार नहीं होंगे कि वे इस कारण से इस बात की निन्दा करें कि मैं मुसलमान हूं और वे यह सोचें कि मेरे मन में कुछ और है। मेरे मन में किसी प्रकार के छिपे भाव नहीं हैं। सामान्य विषयों पर वार्तालाप करने का हमें अधिकार है और हम पर घातक प्रवृत्तियों का दोषारोपण नहीं होना चाहिये।

***श्री आर.वी. धुलेकर** (संयुक्तप्रान्त : जनरल): क्या मैं आप से यह जान सकता हूं कि स्विट्जरलैंड एक देश है अथवा एक विश्व सराय?

***उपाध्यक्ष:** आपको इस प्रश्न का उत्तर देने की आवश्यकता नहीं है। इसके बाद का संशोधन प्रो. के.टी. शाह के नाम से संशोधन संख्या 1295 है।

***माननीय श्री के. सन्तानम्** (मद्रास : जनरल): उनके नाम से एक ऐसा ही संशोधन संख्या 1300 पर है, वह भी पेश किया जा सकता है।

***उपाध्यक्ष:** मैं माननीय सदस्य को यह सूचना देना चाहता हूं कि इस संशोधन पर कुछ संशोधन हैं।

इस कारण क्या माननीय सदस्य जिस प्रकार मैं आमंत्रित करूं उस प्रकार संशोधन पेश करेंगे? प्रो. शाह–संशोधन संख्या 1295 ।

***प्रो. के.टी. शाह** (बिहार : जनरल): श्रीमान्, मैं प्रस्ताव पेश करता हूं:

"कि अनुच्छेद 61 के खण्ड (1) में से 'with the Prime Minister at the head' (जिसका प्रमुख प्रधानमंत्री होगा) शब्द निकाल दिये जायें।"

संशोधित रूप में अनुच्छेद इस प्रकार पढ़ा जायेगा:

"There shall be a Council of Ministers to aid and advise the President in the exercise of his functions.'

(राष्ट्रपति को अपने प्रकार्यों का पालन करने में सहायता तथा मंत्रणा देने के लिये एक मंत्रिपरिषद् होगी।)

यह विचार प्रस्तुत करके कि प्रधान मंत्री के पद को विधान के बाहर रखा जाये मैं प्रधान मंत्री पद के रखे जाने का विशिष्ट रूप से विरोध नहीं कर रहा हूं। जबसे सर रोवर्ट वालपोल ने इस पद को ग्रहण किया था तभी से प्रधान मंत्री का पद इंग्लैण्ड के संविधान में विख्यात है। परन्तु ब्रिटिश संविधान में उसका जिक्र अब तक नहीं है। जो कुछ सामाजिक स्थिति, पद संबंधी ऐश्वर्य तथा अन्य अग्रगण्यता उसे प्राप्त हैं वे संविधान की किसी विशिष्ट धारा द्वारा प्राप्त नहीं है वरन् वे परिषदादेशों के कारण उसे प्राप्त हैं।

***श्री तजम्मुल हुसैन** (बिहार : मुस्लिम): क्या मैं प्रो. शाह से यह जान सकता हूं कि यद्यपि वे यह कहते हैं कि इंग्लैण्ड का संविधान इस बात से परिचित नहीं है कि आया प्रधानमंत्री है या नहीं, परन्तु क्या यह सत्य नहीं है कि समस्त संसार यह जानता है कि इंग्लैण्ड का कोई प्रधान मंत्री है?

***प्रो. के.टी. शाह:** मैंने यह नहीं कहा है कि प्रधान मंत्री के पद को न रखा जाये। मैं तो केवल यह विचार प्रस्तुत कर रहा हूं कि उसका जिक्र संविधान में न किया जाये। इसका यह आशय नहीं है कि वह प्रधानमंत्री के रूप में विख्यात नहीं होगा और न यह अर्थ है कि वास्तव में प्रधानमंत्री होगा ही नहीं। ऐसी कोई बात नहीं है। इसका केवल यही आशय है कि जहां तक संविधान का संबंध है उसमें मंत्रियों को तो मंत्री कहा जाये, उसके अतिरिक्त किसी मंत्री के संबंध में पृथक् महत्त्व अथवा स्थान अथवा व्याख्या को संविधान में न लिखा जाये जिससे कि संविधान किसी हद तक लचीला रहा आये अन्यथा वह किसी हद तक लचीला न रहेगा।

अर्थमंत्री का वर्णन हम यहां अर्थमंत्री के रूप में नहीं करते हैं इसी प्रकार यद्यपि सुरक्षा मंत्री तो कोई न कोई होगा ही परन्तु हम संविधान में सुरक्षा मंत्री

[प्रो. के.टी. शाह]

की विशिष्ट रूप में हम व्यवस्था नहीं करते हैं। इसी प्रकार प्रधानमंत्री भी होगा चाहे हम संविधान में इस पद की कोई व्यवस्था साफ-साफ लफ्जों में की जाये या नहीं और चाहे उसका इस प्रकार वर्णन भी न किया जाये जैसा कि यहां किया गया है।

श्रीमान्, मैंने यह आरंभ में ही कहा था कि प्रधानमंत्री का पद बड़ा ही लाभदायक है और वह किसी दल को सुसंगठित रखने के लिये आवश्यक है। उसके कारण कार्य को शीघ्र पूरा करने, बांटने और आनियमन का कार्य हो सकता है। अन्य प्रकार से भी इस पद से संविधान को अमल में लाने में काफी सहायता मिलती है। किन्तु संविधानिक सिद्धान्तों की दृष्टि से मैं कह सकता हूं कि यह पूर्णतया अनावश्यक हैं, और मैं तो यहां तक समझता हूं कि यह वांछनीय भी नहीं है कि हम प्रधान मंत्री को प्रधान मंत्री के रूप में, मंत्रिपरिषद् के प्रमुख के रूप में रखने के लिये आग्रह करें।

इस संशोधन को रखने का दूसरा कारण यह है कि मैं मंत्रियों को परस्पर बराबर ही नहीं मानता हूं परन्तु मैं यह भी समझता हूं कि यदि किसी कारणवश प्रधानमंत्री अनिष्टकारी हो जाये अथवा उसका कोई अन्य साथी अनिष्टकारी हो जाय तो उनको हटाने के लिये हमें समस्त मंत्रिमंडल के पूर्ण परिवर्तन के लिये विवश नहीं होना चाहिये। संविधान के रूप में यह संविधान प्रधान मंत्री को जो शक्ति प्रदान करता है वह शक्ति इस बात को अनिवार्य बना देगी कि उसके हाथ में शक्ति का संकेन्द्रण हो ऐसा संकेन्द्रण जो उत्तरदायी तथा प्रजातन्त्रात्मक सरकार से मेल न खाता हो।

यह हो सकता है—और ऐसा बहुधा हुआ है—कि किसी विशेष अवसर पर कोई एक विशेष मंत्री लोगों को पसन्द न हो अथवा सरकार की कोई विशिष्ट नीति प्रजा को पसन्द हो। अब यदि कोई विशेष मंत्री ही पसंद नहीं है तो मैं स्वयं यह सोचता हूं कि सामूहिक उत्तरदायित्व के सिद्धान्त के अन्तर्गत, जो बाद में इस अनुच्छेद में दिया हुआ है, समस्त मंत्रिमंडल का बलिदान करना अवांछनीय है। समस्त मंत्रिमंडल में परिवर्तन करने की आवश्यकता के बिना हमें किसी एक मंत्री को निकालने की व्यवस्था करनी चाहिये। यह हो सकता है कि प्रधान मंत्री

को जो प्राधिकार प्राप्त होंगे उस प्राधिकार के द्वारा वह एक मंत्री को निकाल दे और फिर भी सामूहिक मंत्रिमण्डल के रूप में सरकार को इस मान्यता पर चला सके कि सारे मंत्रिमंडल का स्थान दूसरे मंत्रिमंडल ने ले लिया है।

मैं समझता हूं कि यह संकट उस समय और भी उग्रतर हो जाता है जब स्वयं प्रधान मंत्री लोकप्रिय या विश्वास-पात्र नहीं रहता ऐसे अवसर पर अपने साथियों के बहुमत के विरुद्ध प्रधान मंत्री को संसद् अथवा लोक-सभा को भंग करने का अधिकार होना चाहिये और यदि वह चाहे तो कम से कम उसे अपने आपको बचाने का एक और अवसर मिलना चाहिये।

श्रीमान्, मेरा यह विचार है कि यह केवल सच्ची, उत्तरदायित्वपूर्ण तथा प्रजातन्त्रात्मक सरकार के काम करने के हित में ही नहीं होगा वरन् सम्बद्ध मंत्रिमण्डल अथवा उसकी नीति के हित में भी होगा। इस कारण मैंने इस संशोधन को प्रस्तुत किया है जिसके संबंध में मैं फिर कहता हूं कि लोक-रूढ़ि के आधार पर न तो वह प्रधान मंत्रित्व पद के बने रहने को ही असंभव कर देता है और न वह प्रधान मंत्री के रूप में किसी भी मंत्री को हम जिन शक्तियों तथा प्रकार्यों को सौंपते हैं उनका हरण ही करता है।

***उपाध्यक्ष:** संशोधन संख्या 1296 जो श्री रामनरायण सिंह के नाम से है। सदस्य उपस्थित नहीं थे।

(संशोधन पेश नहीं किया गया।)

इसके बाद संशोधन संख्या 1297 तथा 1298 है जो सर्वश्री मुहम्मद ताहिर और सैयद जफर इमाम के नाम से हैं। उनको साथ-साथ पेश किया जा सकता है।

***श्री मुहम्मद ताहिर** (बिहार : मुस्लिम): उपाध्यक्ष, श्रीमान्, मैं प्रस्ताव पेश करता हूं:

"कि अनुच्छेद 61 के खण्ड (1) के अन्त में (हिन्दी रूपान्तर के आरंभ में) निम्न प्रविष्ट किया जाये:

'Except in so far as he is by or under this Constitution required to exercise his functions or any of them in his discretion.'"

[श्री मुहम्मद ताहिर]

(सिवा उन प्रकार्यों अथवा उनमें से किसी एक के पालन करने में जिनके लिये इस संविधान द्वारा अथवा उसके अन्तर्गत राष्ट्रपति के लिये अपने स्वविवेक का प्रयोग करना अपेक्षित है।)

यदि यह संशोधन स्वीकार कर लिया जाता है तो अनुच्छेद इस प्रकार पढ़ा जायेगा।

"सिवा उन प्रकार्यों अथवा उनमें से किसी एक प्रकार्य के पालन करने में जिनके लिये इस विधान द्वारा अथवा उसके अन्तर्गत के राष्ट्रपति के लिये अपने स्वविवेक का प्रयोग करना अपेक्षित है राष्ट्रपति को अपने प्रकार्यों का पालन करने में सहायता तथा मंत्रणा देने के लिये एक मंत्रिपरिषद् होगी, जिसका प्रमुख प्रधान मंत्री होगा।"

मेरा दूसरा संशोधन इस प्रकार है:

"कि अनुच्छेद 61 के खण्ड (1) के पश्चात् निम्न नया खण्ड प्रविष्ट किया जाये और वर्तमान खण्ड (2) की क्रम संख्या (3) कर दी जाये:

'(2) If any question arises whether any matter is or is not a matter as respects which the President is by or under this Constitution required to act in his discretion, the decision of the President in his discretion, shall be final and the validity of any thing done by the President shall not be called in question on the ground that he ought or ought not to have acted in his discretion.'"

[(2) यदि कोई ऐसा प्रश्न उठता है कि क्या कोई विषय ऐसा विषय है या नहीं कि जिसके संबंध में राष्ट्रपति को इस संविधान द्वारा अथवा उसके अन्तर्गत अपने स्वविवेक से कार्य करना आवश्यक है तो इस प्रश्न पर अपने स्वविवेक के संबंध में राष्ट्रपति का निर्णय अन्तिम होगा और राष्ट्रपति द्वारा किसी कार्य-संपादन की मान्यता के प्रति इस आधार पर आपत्ति नहीं की जायेगी कि उसे अपने स्वविवेक से कार्य करना चाहिये या नहीं।]

इन संशोधनों को पेश करते हुए, यद्यपि श्री कामत के शब्दों में राष्ट्रपति नाम मात्र का राष्ट्रपति है, फिर भी मैं चाहता हूं कि राष्ट्रपति को चारों ओर से जकड़

नहीं देना चाहिए। कम से कम इस सभा को इतना उदार तो होना चाहिये कि वह उसे अपनी स्वविवेकात्मक शक्तियों का प्रयोग करने की स्वतंत्रता दे। इस अपवाद का पुर:स्थापन करते हुए मैं यह निवेदन करूंगा कि यह कोई अनोखा अपवाद नहीं है; यदि आप इस संविधान के मसौदे के अनुच्छेद 148 को देखेंगे तो आपको विदित होगा कि राज्य के मंत्रियों और शासकों के प्रति यही अपवाद स्वीकार किया गया है। जब कि राज्य के शासकों को यह अधिकार दिया गया है कि वे कुछ शक्तियों को अपने स्वविवेक के अनुसार प्रयोग कर सकते हैं तो मुझे कोई ऐसा कारण प्रतीत नहीं होता कि यह निर्दोष अधिकार भारत के राष्ट्रपति को क्यों न दिया जाये।

इस संबंध में मुझे कोई लंबा भाषण देने की आवश्यकता नहीं है। मैं यह आशा लिये हुए अपना भाषण समाप्त करता हूं कि मेरे माननीय मित्र डॉ. अम्बेडकर इस प्रश्न पर गंभीरतापूर्वक विचार करेंगे और मेरे संशोधनों के पक्ष में निर्णय करेंगे। इन चन्द शब्दों के साथ मैं अपने संशोधन पेश करता हूं।

***उपाध्यक्ष:** तत्पश्चात् प्रो. के.टी. शाह के संशोधन संख्या 1299 और 1300 आते हैं।

***प्रो. के.टी. शाह:** क्या मैं दोनों को साथ-साथ पेश कर सकता हूं? उनमें से एक पर और भी संशोधन है।

***उपाध्यक्ष:** जी हां।

***प्रो. के.टी. शाह:** श्रीमान्, मैं प्रस्ताव पेश करता हूं:

"कि अनुच्छेद 61 के खंड (2) के अन्त में 'except by the High Court of Parliament when trying a President under section 50' (हिन्दी रूपान्तर में 'पर' शब्द के पश्चात् 'धारा 50 के अन्तर्गत राष्ट्रपति पर अभियोग की जांच करते समय सिवा संसद् के उच्च न्यायालय के अन्य') शब्द प्रविष्ट कर दिये जायें।"

आपकी मंत्रणा के अनुसार मैं अभी अपने संशोधन 1300 को भी पेश करता हूं।

[प्रो. के.टी. शाह]

मैं प्रस्ताव पेश करता हूं:

"कि अनुच्छेद 61 के खण्ड (2) के पश्चात् निम्न नवीन खण्ड प्रविष्ट किये जायें:

'(2A) On every change in the Council of Ministers, and particularly on every change of the holder of Prime-Ministership, the Prime Minister (alternatively, the President) shall present the new minister as the case may be to the People' House of Parliament, and shall ask for a vote of confidence from that body in the particular minister newly appointed. In the event of an adverse vote in the case of a particular minister, the minister concerned shall fortwith cease to hold office and a new minister appointed. If a vote of confidence in the Council of Ministers collectively is refused, the Council as a whole shall resign and a new Ministry formed in its place.

(2B) Every minister shall, at the time of his appointment, be either an elected member of one or the other House of Parliament, or shall seek election and be elected member of one or the other House within not more than six months from the date of his appointment, provided that no one elected at the time of a General Election, and appointed minister within less than six months of the date of the General Election, shall be liable to seek election.

(2C) No one who is not an elected member of either House of Parliament shall be appointed minister unless he gets elected to one or the other House of Parliament within six months of the date of his appointment.

(2D) Not less than two-thirds of the members of the Council of Ministers shall at any time be members of the

People's House of Parliament; and not more than one-third of the members of the Council of Ministers shall at any time be members of the Council of States. Members of the Council of Ministers may have such assistance in the shape of Deputy Minister or Parliamentary Secretaries as Parliament may by law from time to time determine, provided that no one shall be appointed Deputy Minister or Parliamentry Secretary who at the time of his appointment was not an elected member of either House of Parliament, or who is not elected within six months of the date of his appointment to a seat in one or the other House of Parliament.

(2E) No one shall be appointed Minster or Deputy Minister or Parliamentary Secretary, who has been convicted of treason, or of any offence against the sovereignty, security, or integrity of the State, or of any offence involving moral turpitude and of bribery and corruption and liable to a maximum punishment of two years' rigorous punishment.' "

[(2क) मंत्रिपरिषद् में प्रत्येक परिवर्तन होने पर तथा विशेषतया प्रधानमंत्री-पदधारी के बदलने पर प्रधानमंत्री (विकल्पत: राष्ट्रपति) यथास्थिति नये मंत्री को संसद् की लोकसभा में प्रस्तुत करेंगे और उस निकाय से उस नवीन नियुक्त मंत्री के प्रति विश्वास का प्रस्ताव स्वीकार करने के लिये कहेंगे। किसी विशिष्ट मंत्री के संबंध में विरोधी मत प्रकट होने की स्थिति में वह मंत्री उसी समय से पदच्युत हो जायेगा और कोई नया मंत्री नियुक्त किया जायेगा। यदि सामूहिक रूप से मंत्रिपरिषद् पर विश्वास का प्रस्ताव अस्वीकार किया गया तो समस्त परिषद् को पदत्याग करना होगा और उसके स्थान में नया मंत्रिमंडल बनाया जायेगा।

[प्रो. के.टी. शाह]

(2ख) नियुक्ति के समय प्रत्येक मंत्री या तो संसद् के दोनों आगारों में से किसी एक का निर्वाचित सदस्य होगा और या निर्वाचित होने के लिये प्रयास करेगा और अपनी नियुक्ति तिथि से 6 माह के भीतर किसी न किसी आगार का सदस्य निर्वाचित हो जायेगा पर कोई भी व्यक्ति जो सामान्य निर्वाचन के समय निर्वाचित हुआ था तथा सामान्य-निर्वाचन-तिथि से 6 माह के भीतर मंत्री नियुक्त किया गया है वह निर्वाचित होने के लिये प्रयास करने के लिये बाध्य नहीं होगा।

(2ग) किसी भी व्यक्ति को जो संसद् के दोनों आगारों में से किसी आगार का सदस्य नहीं है तब तक मंत्री नियुक्त नहीं किया जायेगा जब तक कि वह अपनी नियुक्त तिथि से 6 माह के भीतर संसद् के किसी न किसी आगार का सदस्य निर्वाचित न हो।

(2घ) किसी भी समय मंत्रिपरिषद् के सदस्यों में कम से कम दो तिहाई ऐसे होंगे जो संसद् की लोक-सभा के सदस्य भी हैं और न किसी समय मंत्रिपरिषद् के सदस्यों में से एक तिहाई से अधिक सदस्य ऐसे होंगे जो राज्यपरिषद् के सदस्य भी हैं। मंत्रिपरिषद् के सदस्य ऐसे उपमंत्रियों तथा संसदीय सचिवों से सहायता प्राप्त कर सकते हैं जैसों का कि संसद् समय-समय पर विधि द्वारा निश्चय करे। पर किसी ऐसे व्यक्ति को उपमंत्री तथा संसदीय सचिव नियुक्त नहीं किया जायेगा जो नियुक्ति के समय संसद् के दोनों आगारों में से किसी आगार का भी निर्वाचित सदस्य नहीं है। अथवा जो संसद् के किसी आगार में नियुक्त तिथि से 6 माह के भीतर निर्वाचित न हो जाये।

(2ङ) जो व्यक्ति राजद्रोह के लिये अथवा राज्य की प्रभुता, सुरक्षा या अक्षुण्णता के विरुद्ध अपराध के लिये अथवा नैतिक दुराचार और उत्कोच और भ्रष्टाचार वाले तथा अधिक से अधिक दो वर्ष के कठोर कारावास से दण्डित होने वाले अपराध के लिये दोष प्रमाणित

हुआ है वह मंत्री या उपमंत्री अथवा संसदीय सचिव नियुक्त नहीं किया जायेगा।]

***उपाध्यक्ष:** माननीय सदस्य पांचवें सप्ताह की सूची 4 में दिये हुए संशोधन संख्या 47 को पेश कर सकते हैं।

***प्रो. के.टी. शाह:** मैं प्रस्ताव पेश करता हूं:

"कि संशोधन संख्या 1300 में, जिसको मैंने अभी पेश किया है, खण्ड (2ङ) के अन्त में निम्न जोड़ दिया जाये:

'Every Minister shall, before entering upon the functions of his office, declare all his right, interest or title in or to any property, business, industry, trade or profession, and shall divest himself of the same either by selling all or any such right, interest, or title in or to any property, business industry, trade or profession in open market or to Government at the market price; and further, shall take an oath ever to consider exclusively the interests of the country and not seek to promote his own interest or aggrandisement of his family in any act he may do or appointment he may have to make.' "

(अपने पद के प्रकार्यों को संभालने के पूर्व प्रत्येक मंत्री किसी सम्पत्ति, वाणिज्य, उद्योग, व्यापार अथवा व्यवसाय में अथवा उसके संबंध में अपने समस्त स्वत्व, हित अथवा स्वामित्व की घोषणा करेगा और सम्पत्ति वाणिज्य, उद्योग, व्यापार अथवा व्यवसाय में या उसके संबंध में अपने उन सब अथवा उनमें से किसी भी ऐसे स्वत्व, हित अथवा स्वामित्व को खुले बाजार में अथवा बाजार की दर से सरकार को बेचकर उनसे स्वयं पृथक् हो जायेगा; और फिर इस बात की शपथ ग्रहण करेगा कि वह सदैव देश के हितों का पूरा-पूरा ध्यान रखेगा और जो कोई भी कार्य उसे करना है उसके करने में अथवा जो नियुक्ति उसे करनी है उसके करने में वह अपने निजी हितों को उन्नत करने के लिये अथवा अपने कुटुम्ब के अभ्युदय के लिये प्रयास नहीं करेगा।)

[प्रो. के.टी. शाह]

श्रीमान्, संशोधन संख्या 1299, के संबंध में मैं यह तो मानता हूं कि सामान्यतया जो मन्त्रणा कोई मन्त्री राष्ट्रपति को दे उसे बहुत गुप्त रखा जाये अत: किसी साधारण रीति से उसकी जांच करने की छूट न हो। परन्तु यदि ऐसा हो कि राष्ट्रपति अथवा किसी मंत्री पर अभियोग चल रहा हो, विशेषकर जब राष्ट्रपति पर अभियोग चल रहा हो और संसद् ने या तो स्वयं ही अभियोग लगाते समय जांच करने का आदेश दे दिया है अथवा ऐसी जांच करा ली है तो न्याय के हितार्थ यह आवश्यक है, और उस हालत में तो खासतौर पर जरूरी है जब कि दी गई मन्त्रणा के संबंध में ही यह प्रश्न उत्पन्न है कि संविधान का पालन किया गया है अथवा नहीं उस स्थिति में यह नि:सन्देह सही तथा उचित है कि उच्च न्यायालय अथवा संसद् को यह पूछने का अधिकार हो कि क्या मन्त्रणा दी गई थी।

ऐसी दशा में फैसला इस बात पर निर्भर होगा कि वाकया क्या था और कहां तक वह सम्मति ठीक थी उस सूरत में वाकया होगा राष्ट्रपति को दी हुई मन्त्रणा हो और इस संविधान के अन्तर्गत राष्ट्रपति सदैव यह तर्क प्रस्तुत कर सकेगा कि उसने अपने मन्त्री की मंत्रणा के अनुसार कार्य किया। यदि किसी व्यक्ति द्वारा उस मंत्रणा की परिपृच्छा नहीं की जाती है तो मैं समझता हूं कि जब कभी राष्ट्रपति पर अभियोग लगाया जायेगा उस समय उसके साथ यह अन्याय होगा। यदि मंत्री ने जो कुछ मंत्रणा उसे दी है उसको वह अपनी सर्वोत्तम रक्षा के रूप में प्रस्तुत नहीं कर सके। मैं समझता हूं कि इस आधार पर मेरा संशोधन इस प्रकार की विशेष स्थिति को स्पष्ट करेगा और इस कारण उसे स्वीकार करना चाहिये।

मेरे दूसरे संशोधन के संबंध में मैं यह बताना चाहता हूं कि वह उन तीन या चार प्रमुख विषयों पर सुझाव प्रस्तुत करता है जो मुझे इस विधान में यहां स्पष्ट रूप से दिये हुए दिखाई नहीं देते हैं। सामूहिक रूप में मंत्रियों के विधान-मण्डल के प्रति उत्तरदायी होने के कारण यह स्पष्ट है कि उनको उस मंडल का सदस्य होना चाहिये बाद में इस संविधान में विधान-मण्डल संबंधी कुछ खंड दिये हुए हैं जिनमें इस प्रकार के प्रावधान मिलते हैं। उन खंडों पर भी कुछ संशोधनों की सूचना देने का मुझे गौरव प्राप्त है। परन्तु मैं समझता हूं कि यह उपयुक्त स्थल

है जहां कि हमें कोई ऐसा निश्चित प्रावधान रखना चाहिये कि मंत्रिमण्डल निर्माण करते समय संसद् में—संसद के किसी भी आगार में—उन मंत्रियों का स्थान होना चाहिये जो संसद् के प्रति उत्तरदायी हैं अथवा यह कि यदि उनका कोई ऐसा स्थान नहीं है तो मंत्री नियुक्ति होने की तिथि से 6 मास के भीतर वे ऐसा स्थान प्राप्त कर लें। यह एक बहुत ही साधारण सी बात है और इसकी पुष्टि उस प्रथा से भी होती है कि बहुत से लोकप्रिय संविधानों में ऐसी रीति है—मसलन इंग्लैंड के संविधान में—अत: इसका कोई विरोध नहीं होना चाहिये।

श्रीमान्, दूसरा विषय जिसका मैंने सुझाव दिया है वह निरपेक्ष नहीं है। मैंने केवल यह सुझाव रखा है कि किसी समय भी मंत्रिपरिषद् के सदस्यों में से कम से कम दो तिहाई सदस्य ऐसे होने चाहियें जो लोक-सभा के सदस्य भी हैं। यह स्पष्ट है कि लोक-सभा का अधिक महत्त्व होना चाहिये क्योंकि उस सभा के विश्वास प्रस्ताव के कारण ही मन्त्रिमण्डल अपने पद पर बना रहेगा। ऐसा होने के कारण मैं समझता हूं कि उस सभा में पर्याप्त मात्रा में मन्त्रियों की उपस्थिति अत्यन्त आवश्यक है। दूसरी सभा के संसद् के अधिकतर प्रकार्यों में समवर्त्ती अथवा बराबर की साझीदार होने के कारण यह आवश्यक है कि उसमें भी कुछ मन्त्री उपस्थित रहें जो उस सभा की सरकार अथवा मन्त्रिमण्डल का दृष्टिकोण बता सकें। अत: मैंने यह सुझाव रखा है कि कम से कम दो तिहाई सदस्य अवरागार में हों और उसके सदस्यों में से कम से कम एक तिहाई राज्यपरिषद् में हों। मोटे रूप में इस विधान के अन्तर्गत लोक-सभा और राज्यपरिषद् की सदस्यता से भी यह क्रमश: साम्य रखता है। अत: मैं सोचता हूं कि इस संशोधन पर भी आपत्ति नहीं होगी।

चाहे मन्त्री अपने को किसी नाम से क्यों न पुकारें किन्तु उन्हें संसदीय सचिवों तथा उपमन्त्रियों से चाहे सहायता लेने की बात तो संसदीय कार्यप्रणाली को सुविधाजनक बनाने की ही बात है। यह इसलिए आवश्यक है जिससे कि उस हालत में जब कि मुख्य मन्त्री या किसी मंत्री ने सार्वजनिक कार्यों में अति व्यस्त होने से समय की कमी के कारण उपस्थित न हो अथवा गैरहाजिर हो यह

[प्रो. के.टी. शाह]

मुश्किल न हो कि सभा में प्रस्तुत विषयों पर मन्त्रिमण्डल का दृष्टिकोण रखने वाला वहां कोई व्यक्ति ही न हो। उस प्रकार की संसदीय सहायता प्राप्त कराने के लिये संविधान में व्यवस्था होनी चाहिये जैसी कि उपमन्त्रियों और संसदीय सचिवों संबंधी संशोधन से मैंने प्रस्तावित की है।

यह स्पष्ट है कि ये मन्त्री उस दर्जे के मंत्री नहीं होंगे जिस दर्जे के प्रधानमन्त्री अथवा मन्त्रिमंडल के अन्य मंत्री होंगे। विशिष्ट रूप से संविधान में यह स्पष्ट घोषणा होनी चाहिये कि राज्य के विभिन्न विभागों के मन्त्रियों के वे केवल सहायक होंगे। परन्तु संविधान में उनकी नियुक्ति की विशेष रूप से व्यवस्था होनी चाहिये और उसे किसी विशिष्ट मंत्रिमंडल की आवश्यकताओं पर नहीं छोड़ देना चाहिये।

इन सहायक मंत्रियों की संख्या तथा उनके ठीक-ठीक प्रकार्य समय-समय पर संसद् द्वारा निश्चित किये जाने चाहियें जिससे कि ये नियुक्तियां केवल उस कार्यपालन प्रादेश का विषय न हो जाये जिसकी पुष्टि करने की संसद् को आवश्यकता नहीं है।

जिस सामूहिक सिद्धान्त पर यह अनुच्छेद आश्रित है उसका मेरी समझ में यह तकाजा है कि प्रत्येक नवीन नियुक्ति के लिये तथा जब समस्त मंत्रिमंडल प्रथम बार नियुक्त हो तो उसके लिये सभा में विश्वास का प्रस्ताव आना चाहिये और यदि प्रस्ताव स्वीकार न हो तो उस मंत्री अथवा मंत्रिमंडल को पदत्याग कर देना चाहिये और उसके स्थान में नवीन नियुक्ति होनी चाहिये।

अन्त में श्रीमान्, प्रश्न यह है कि क्या मंत्रियों की ईमानदारी का विषय उनके सरकारी कर्त्तव्यों से सम्बद्ध है? इससे पूर्व अवसर पर राष्ट्रपति के संबंध में विचार प्रस्तुत करते हुए मैंने एक यह सुझाव रखा था कि राष्ट्रपति व्यापार, सम्पत्ति, वाणिज्य अथवा उद्योग संबंधी अपने उन समस्त स्वत्वों, स्वामित्वों तथा हितों की घोषणा करेगा जो निर्वाचन के पूर्व उसे प्राप्त हों, और उस स्वत्व, स्वामित्व इत्यादि को या तो बेच देगा या उसका उत्सर्जन कर देगा अथवा उस समय तक के लिये जब तक कि वह अपने पद पर रहे सरकार के हाथ में थाती रख देगा। श्रीमान्, उस समय मुझ से यह कहा गया था कि चूंकि राष्ट्रपति

न्यूनाधिक रूप में राज्य का नाम मात्र का अथवा शोभामात्र का कार्यपालक प्रमुख होगा इसलिये उसे ऐसी कोई शक्ति प्राप्त नहीं होगी जिससे राज्य के हितों पर वह कोई आघात कर सके। अतः इसको इस बात के लिये बाध्य करना अनावश्यक है कि वह अपने स्वत्व, स्वामित्व तथा हित की घोषणा करे, उनको बेचे अथवा अपने पदकाल के लिये उन्हें सरकार के पास थाती रख दे। उस समय मुझसे यह भी कहा गया था कि कार्यपालक प्राधिकार के अर्थात् मंत्रिपद के संबंध में यदि ऐसा कोई सुझाव रखा जायेगा तो संभव है कि उस पर विचार किया जाये।

मैं इतना मूर्ख तो नहीं हूं कि मैं यह विश्वास कर लूं कि इस नपे तुले कथन का, जिसे मैं आश्वासन तो कह ही नहीं सकता हूं, अक्षरशः पालन किया जायेगा और वह भी उस समय जब कि दुर्भाग्यवश इस विचार को मैं प्रस्तुत कर रहा हूं। इस समय मसौदा लेखकों को दूसरों की ओर का वक्ता भी समझकर क्या मैं उनको उस सोच समझकर कहे गये आश्वासन का (यद्यपि मैं तो उसको आश्वासन नहीं कहूंगा) अथवा विचार का स्मरण कराने का साहस कर सकता हूं जो उन्होंने पहले प्रकट किया था और उनसे यह निवेदन कर सकता हूं कि इस समय कम से कम उस विषय पर उचित रूप से विचार तो करें और यह देखें कि यदि मेरे शब्दों द्वारा नहीं तो अन्य शब्दों द्वारा क्या कोई ऐसा आश्वासन दिया जा सकता है कि जिससे मंत्री, जो कि देश के सच्चे कार्यपालक मुखिया हैं, प्रलोभन से मुक्त रह सकें और अपने तथा अपने परिवार के संबंध में न सोचते हुए देश के हित में तन मन से अपने आपको लगा दें। मैं आशा करता हूं कि यह संशोधन स्वीकार किया जायेगा।

***उपाध्यक्षः** इस संशोधन पर एक संशोधन है। उसकी संख्या 46 है और वह श्री कामत के नाम से है।

***श्री एच.वी. कामतः** उपाध्यक्ष महोदय, मैं प्रस्ताव पेश करता हूं:

"कि संशोधनों की सूची में के संशोधन संख्या 1300 में प्रस्तावित नये खंड (2ङ) में 'moral turpitude' के पश्चात् आने वाले समस्त शब्दों को निकाल दिया जाये (हिन्दी रूपान्तर में और 'उत्कोच' और

[श्री एच.वी. कामत]

'दण्डित होने वाले' शब्दों के बीच में आये हुए सब शब्दों को निकाल दिया जाये।)''

मेरे मित्र प्रो. शाह ने अभी संशोधन सं. 1300 पेश किया है जिसमें पांच उपखंड हैं। मैं दावे से कह सकता हूं कि न तो डॉ. अम्बेडकर और न इस सभा में उपस्थित मेरे माननीय मित्रों में से अन्य कोई भी प्रो. शाह द्वारा पेश किये गये संशोधन सं. 1300 में निहित सिद्धान्तों के बारे में कोई आपत्ति करेगा। मैंने अपने संशोधन संख्या 46 में और "उत्कोच" और "दण्डित होने वाले" शब्दों के बीच में आये हुए सब शब्दों को निकालने के सुझाव रखने का प्रयास किया है क्योंकि मेरा विचार है कि उत्कोच और भ्रष्टाचार "नैतिक नीचता" में आ जाते हैं। मेरा विचार है कि नैतिक नीचता के अन्तर्गत उत्कोच भ्रष्टाचार तथा और भी इस संबंध के अन्य अपराध आ जाते हैं श्रीमान्, मुझे विश्वास है कि यहां उपस्थित मेरे मित्र मुझसे इस बात में सहमत होंगे कि किसी भी सरकार के लिये यह श्रेय की बात नहीं होगी कि वह किसी ऐसे मंत्री को अपनी परिषद् में रखे जो बदनाम हो चुका हो या जिसके चालचलन या ईमानदारी के संबंध में किसी भी प्रकार की शंका हो। मुझे आशा है कि हमारे देश में ऐसी कोई घटना नहीं होगी परन्तु कुछ हाल की घटनाओं से मेरे मन में कुछ शंका होने लगी है। श्रीमान् मैं एक छोटे से लेख—एक छोटी सी टिप्पणी का हवाला देता हूं जो मंत्रिमण्डल के संबंध में बम्बई के ता: 8 सितम्बर 1948 के फ्री प्रेस जर्नल में प्रकाशित हुई है। उस लेख का तत्संबंधी भाग इस प्रकार है:

"मंत्रिमंडल (.....मंत्रिमंडल) में एक ऐसा व्यक्ति है जो चोरबाजारी का प्रमाणित अपराधी है और यह कहा जाता है कि इस अयोग्यता का, जो न्यायालय में अपराधी प्रमाणित हो जाने के फलस्वरूप सिद्ध हो गई थी और जिसके कारण अन्तर्वर्ती सरकार में उनको शरीक करने में बड़ी कठिनाई हुई, महाराजा ने उदारतापूर्वक निराकरण कर दिया।"

***उपाध्यक्ष:** मैंने आपकी बात नहीं सुनी अन्यथा मैं आपको नाम उद्धृत करने की आज्ञा न देता।

***श्री एच.वी. कामतः** मैं समाचार-पत्र में छपे हुए लेख को केवल पढ़ रहा हूं।

***उपाध्यक्षः** अब तो मैं निरुपाय हूं। मैं आपको राज्य का नाम बताने की अनुमति न देता और उद्धरण को पढ़ने की अनुमति दे देता।

***श्री एच. वी. कामतः** "यद्यपि महाराजा ने उस अयोग्यता का निराकरण कर दिया है परन्तु समाज-विरोधी उसके पाप को जनता किस प्रकार भूल सकती है और क्षमा कर सकती है? उस सरकार को जिसमें ऐसा व्यक्ति है किस प्रकार लोकप्रिय सरकार कहा जा सकता है? प्रजातंत्र का उपहास करने के अलावा इस प्रकार के व्यक्तियों को रखने से सरकार का गौरव मिट जायेगा और उसके फलस्वरूप आरंभ में ही जनता के विचारों में उत्साह और विश्वास उत्पन्न करने में सरकार असफल हो जायेगी। क्या इस अव्यवस्था का शीघ्र ही अन्त किया जायेगा?"

मैं यह नहीं जानता हूं कि यह पूर्णतया सच है परन्तु फिर भी समाचार-पत्रों को किसी मंत्रिमंडल अथवा किसी सरकार के बारे में इस प्रकार के लेखों को प्रकाशित करने के लिये कुछ सामग्री देने से न तो सरकार का ही लाभ होता है और न यह लोक हित के पक्ष में है। मैं आज्ञा करता हूं कि किसी राज्य के अथवा हमारे देश की केन्द्रीय सरकार के किसी भी उम्मीदवार मंत्री के लिये यह अयोग्यता मानी जायगी।

यह तर्क प्रस्तुत किया जा सकता है कि इस खास संशोधन के लिये यहां जगह नहीं है और हम इस निर्योग्यता को अनुच्छेद 83 में भी रख सकते हैं जो लोक सभा के सदस्यों की निर्योग्यताओं के संबंध में है चूंकि मंत्री का चुनाव लोक सभा के सदस्यों में से किया जायेगा। पर इस विषय में एक कठिनाई है जिसके संबंध में मैं डॉक्टर अम्बेडकर से प्रार्थना करूंगा कि इस वाद-विवाद का उत्तर देते समय वे उसे स्पष्ट करें जिस रूप में अनुच्छेद 83 है उसमें इस प्रकार की कोई भी निर्योग्यता नहीं है। उसमें एक व्यापक उपखण्ड है जो इस प्रकार है:

"(ङ) यदि वह संसद् निर्मित किसी विधि के द्वारा अथवा अधीन इस प्रकार निर्योग्य कर दिया गया है।"

[श्री एच.वी. कामत]

निश्चय ही मुझे ऐसी संभावना दिखाई देती है, यही नहीं वरन् यह सत्य है कि संसद् अवश्य ही विभिन्न निर्योग्यताओं को विहित करेगी। पर वह संसद् तो राज्यों और केन्द्र में मंत्रिमंडल बन जाने के पश्चात् नये विधान के अनुसार चुनाव हो जाने पर बनेगी। इसलिये यदि अनुच्छेद 83 में लोक-सभा के सदस्यों अथवा मंत्रियों के लिये निर्योग्यताओं को स्पष्ट रूप से निर्धारित नहीं किया जाता है तो हम यह निश्चय नहीं कर सकते कि कुछ लोग जो दोषी हैं या जिन पर कुछ अपराधों का शक किया जाता है वे लोग राज्य अथवा केन्द्र के मन्त्रिमण्डल के सदस्य हो सकेंगे या नहीं, राज्य अथवा केन्द्र में सरकारों के बन जाने के बाद यदि संसद् इस विषय के इस विशेष रूप पर ध्यान देती है तो वह बैठक कर के कोई विधि पारित तो करेगी ही पर यह सब राज्यों और केन्द्र में सरकार बनने के पश्चात् होगा। इस कारण इसका निर्माण करते समय ही राज्य अथवा केन्द्र के मंत्रिमण्डलों के सदस्यों की निर्योग्यताओं के संबंध में प्रावधान रखना चाहिये।

अतः श्रीमान्, प्रो. के.टी. शाह के संशोधन का समर्थन करते हुए मैं इस संशोधन को पेश करता हूं और उसके अन्तिम भाग अर्थात् 1300 का 2ङ पर यह प्रस्ताव रखता हूं कि "Moral turpitude" के पश्चात् आये हुए सब शब्दों को निकाल दिया जाय क्योंकि उन शब्दों का अर्थ "Moral turpitude" के अन्तर्गत है।

***उपाध्यक्षः** उस सदस्य को बुलाने के पूर्व जिसके नाम से संशोधन है मैं इस संबंध में सभा की अनुमति प्राप्त करना चाहता हूं कि हमारी सरकारी वाद-विवाद की प्रतियों में समाचार-पत्र के लेख की उद्धृत करते समय उस राज्य का नाम किसी चिह्न द्वारा प्रकट किया जाये। क्या यह आवश्यक अनुमति मुझे मिल गई? यह अच्छा मालूम होगा। हमें इस आगार के सम्मान की रक्षा करनी है और ऐसा करने का यह भी एक तरीका है।

***श्री एच.वी. कामतः** मुझे कोई आपत्ति नहीं है।

***श्री तजम्मुल हुसैनः** किसी को कोई आपत्ति नहीं है।

***उपाध्यक्षः** धन्यवाद।

(संशोधन संख्या 1301 पेश नहीं किया गया।)

***उपाध्यक्ष:** इस अनुच्छेद पर अब व्यापक वाद-विवाद हो सकता है।

(श्री महावीर त्यागी से) जो लोग बोलना चाहते हैं उनकी संख्या अधिक है इसलिये मैं आपसे निवेदन करता हूं कि आप जितना संक्षेप में बोल सकते हैं बोलें।

***श्री महावीर त्यागी** (संयुक्तप्रान्त : जनरल): उपाध्यक्ष महोदय, मैं इस सभा का अधिक समय लेना नहीं चाहता हूं पर मैं एक बात बताना चाहता हूं। मेरे माननीय मित्र श्री महबूब अली बेग ने यह सुझाव रखा है कि एकलसंक्राम्य मत पद्धति के आधार पर सभा द्वारा मंत्रिमंडल का निर्वाचन हो। इस प्रकार के बड़े-बड़े शब्दों का सब जगह प्रयोग करना बड़ा अच्छा लगता है, पर मेरे मित्र यह भूल जाते हैं कि मंत्रिमण्डल में दो या तीन या जैसा कि मेरे मित्र ने सुझाया है पन्द्रह व्यक्तियों के पृथक्-पृथक् रूप में कार्य करने से बचने के लिये हमने इतना महान् बलिदान किया है। देश को अभी-अभी एक ऐसे मंत्रिमंडल का अनुभव हुआ है जिसमें दो दल मिल कर काम कर रहे थे। यदि अंग्रेजों द्वारा मंत्रिमंडल की ऐसी बुरी रचना न की जाती तो भारत का दो भागों में विभाजन नहीं होता। हमने अपनी भूमि का सर्वोत्तम तथा बेशकीमती भाग दे दिया है और हमने इच्छापूर्वक विभाजन किया है। वास्तव में एक बड़ी कीमत देकर मंत्रिमंडल में हमने इस एकरूपता को प्राप्त किया है। हमारे हजारों मित्र तथा इस देश के नागरिक उस तरफ मारे गये और इसी प्रकार हजारों ऐसे ही भले आदमी जो बिल्कुल निर्दोष थे इस तरफ भी मारे गये। यह सब तो हुआ ही परन्तु इस कटु तथा नृशंस अनुभव के पश्चात् क्या मेरे मित्र अब भी यह हट पकड़ते हैं कि एक ऐसे मंत्रिमंडल का निर्माण किया जाय जिसमें अनेक दलों का प्रतिनिधान हो। एकलसंक्राम्य मत पद्धति द्वारा निर्वाचन का अर्थ है कि कोई भी व्यक्ति जिसके अधिकार में 30 मत हैं उस मंत्रिमंडल में आ सकता है जो राज्य के अत्यन्त आवश्यक गुप्त भेदों से संबंध रखता है; जो बजट निश्चय करता है; जिसे कई संधियां और अन्य महत्त्वपूर्ण प्रकार्य करने पड़ते हैं क्या आप अपने सुभाव से यह आशय रखते हैं कि इस सभा में जितने दल हैं वे सब मंत्रिमण्डल में हों जिससे कि वे न तो किसी बात का निश्चय कर सकें और न किसी भेद को गुप्त रख सकें? क्या हम अपने आपको ऐसी दुर्व्यवस्था में डालना चाहते हैं कि एक ऐसा मंत्रिमंडल बनायें जिसमें समान विचार के व्यक्ति न हों? मैं इस विषय की बारीकियों में नहीं जाना चाहता। सभा समझती है कि कोई भी

[श्री महावीर त्यागी]

मंत्रिमंडल एक दिन के लिये भी नहीं टिक सकता यदि उसके सदस्यों के एक से विचार न हों।

इसके बाद मेरे माननीय मित्र प्रो. के.टी. शाह यह प्रस्ताव रखते हैं कि प्रधान मंत्री जब कभी भी मंत्री नियुक्त करें तो उनको सभा द्वारा विश्वास का प्रस्ताव स्वीकार कराना चाहिये। यद्यपि प्रत्यक्ष रूप से यह सत्य तो है कि प्रधानमंत्री के समान अन्य मंत्रियों को भी सभा द्वारा विश्वास के प्रस्ताव को स्वीकार कराना चाहिये, पर इसमें एक बड़ी बारीक बात है कि यदि मंत्रिमंडल के प्रत्येक सदस्य को स्वयं अपने लिये मत प्राप्त करना आवश्यक है अथवा नियुक्त होने के प्रथम दिवस ही उसकी जांच की जाती है तो इसका मतलब यह होगा कि वे आदमी ही मंत्री बनेंगे जिनके साथी अथवा जिनके निजी दल सभा में हैं। ऐसे मंत्री की सदैव यही प्रवृत्ति रहेगी कि वह अपने निजी दल को सचेष्ट, सक्रिय तथा पृथक् बनाये रखे। सच बात तो यह है कि जब एक मंत्री मंत्रिमण्डल में प्रविष्ट हो जाता है तो वह अपने सम्पूर्ण व्यक्तित्व को तथा अपने समस्त प्रभाव को मंत्रिमंडल में विलीन कर देता है। उसके खुद के कोई शब्द नहीं होते वह प्रधानमंत्री के शब्दों में बोलता है और मंत्रिमण्डल के निर्णय के अनुसार कार्य करता है। मंत्रिमंडल में उसका निजी अस्तित्व कुछ नहीं होता है वह समूचे मंत्रिमंडल से मिलकर पूर्ण इकाई प्राप्त कर लेता है। यदि मंत्रिमंडल में 15 सदस्य हैं तो प्रत्येक सदस्य उस समूचे मंत्रिमंडल का अविभाज्य अंग हो जाता है। प्रधानमंत्री अपने तथा अपने मंत्रिमण्डल का पक्ष समर्थन करता है और मंत्री और मंत्रिमंडल प्रधान मंत्री का पक्ष समर्थन करते हैं। अतः ऐसी परिस्थितियों के अन्तर्गत, यदि प्रो. के.टी. शाह का संशोधन स्वीकार कर लिया जाता है तो उसका वास्तव में यह अर्थ होगा कि जब कभी किसी अन्य मंत्री की नियुक्ति होगी तो प्रधान मंत्री की जांच की जायेगी। वह सदैव प्रधान मंत्री के प्रति विश्वास का प्रस्ताव होगा। सभा केवल एक प्रधानमंत्री को नियुक्त करेगी। और एक बार जब प्रधान मंत्री नियुक्त हो जायेगा तो वह अपने मंत्रिमंडल में अपने पसन्द के उन साथियों को रखेगा जिन पर वह राज्य के सब गुप्त भेदों को प्रकट कर सकता है और उत्तरदायित्वों को बांट सकता है।

प्रधान मंत्री प्रत्येक मंत्री को सभा में अपने-अपने व्यक्तिगत प्रभाव का एक अलग गुट कैसे बनाने देगा? यदि सदस्यों से मंत्रियों के इस प्रकार के संबंध रहेंगे तो मंत्रिमंडल में हर प्रकार का भ्रष्टाचार होगा क्योंकि जब तक वह सदस्यों को खुश करने का प्रयत्न नहीं करेगा तब तक वे उसको मत देने और उसका समर्थन करने के लिये सदैव तत्पर नहीं रहेंगे। यह सदैव हानिकारक तथा जनतन्त्र के विरुद्ध होगा कि मंत्रिगणों को सभा में अपने छोटे-छोटे गुट बनाने दिया जाये। जनतन्त्र में बहुमत प्राप्त दल को शासन व्यवस्था का अधिकार दिया जाता है। प्रधान मंत्री की नियुक्ति बहुमत प्राप्त दल निश्चित करता है, क्योंकि समूचे देश की यह इच्छा होती है कि अमुक नाम का दल शासन संभाले। अत: मंत्रिमण्डल को उस बहुमत प्राप्त दल के प्रति आज्ञाकारी होना पड़ता है जिस दल को जनता की ओर से यह आदेश मिलता है कि वह सरकार का संचालन करे। शासन व्यवस्था सामान्य निर्वाचकों द्वारा स्वीकृत घोषणा-पत्र के अनुसार की जायेगी। इस कारण मैं निवेदन करता हूं कि मंत्रिमण्डल समान विचार का होना चाहिये और यह तभी हो सकता है, जब कि सब मंत्री प्रधान मंत्री द्वारा नियुक्त हों और अपने सम्मोदन के लिये प्रधान मंत्री पर निर्भर हों न कि सभा पर। उनको सभा का प्रिय होना चाहिये और इसके साथ-साथ प्रधानमंत्री का समर्थन करने और अपने पक्ष का समर्थन करने के लिये भी उनको प्रसिद्ध होना चाहिये परन्तु व्यक्तिगत रूप से उनको प्रसिद्धि प्राप्त नहीं करनी चाहिये। प्रत्येक मंत्री अपना व्यक्तिगत समर्थन और प्रभाव संचित करता है और अपने अन्य सहयोगियों के साथ मिलकर वह सभा के एक बहुत बड़े भाग का समर्थन प्राप्त कर लेता है। अत: मैं निवेदन करता हूं कि ये दोनों संशोधन तो जनतन्त्रात्मक विधान के ढांचे को ही ढा देंगे। अभी तक इस प्रकार के दल युक्त मंत्रिमंडल की कहीं भी परीक्षा नहीं हुई है। अत: मैं इस बात पर जोर देता हूं कि दोनों संशोधनों का सिद्धान्त के आधार पर विरोध होना चाहिये और मैं इनका विरोध करता हूं।

***उपाध्यक्ष:** मत्स्य राज्य संघ के श्री राजबहादुर। मैं आपको संक्षेप में बोलने के लिये निवेदन करूंगा क्योंकि बहुत से सदस्य बोलना चाहते हैं।

***श्री तजम्मुल हुसैन:** श्रीमान्, प्रत्येक सदस्य के लिये पांच मिनट रखिये।

***श्री राजबहादुर** (मत्स्य राज्य): उपाध्यक्ष महोदय, श्री महबूब अली बेग द्वारा प्रेषित प्रस्ताव का विरोध करने में मैं अपने माननीय मित्र श्री महावीर त्यागी का साथ देता हूं। श्री महबूब अली बेग ने एक ऐसा संशोधन रखा है जिससे दुर्भाग्यवश सभा के कुछ सदस्यों की वह प्रवृत्ति प्रकट होती है कि किसी न किसी प्रकार से पृथक्वाद तथा विभाजन की भावना को फिर से लाया जाये। यह दुर्भाग्य की बात है कि बहुमत प्राप्त दल के रूप में कांग्रेस के अल्पसंख्यक दलों के प्रति सामान्यतया और मुसलमान अल्पसंख्यक दल के प्रति विशेषतया उदारतापूर्ण व्यवहार के होते हुए भी इस प्रकार की बातें प्रस्तुत की जाती हैं। इस संशोधन में तथा इस संशोधन के पीछे मुझे सम्प्रदायवाद तथा पृथक्वाद की बुराई को प्रवेश कराने का षड्यन्त्र दिखाई देता है। (*वाह, वाह*)

श्री महबूब अली बेग ने अपने संशोधन के पक्ष में तीन मुख्य तर्कों को प्रस्तुत किया है पहली बात उनकी यह है कि परिषदात्मक जनतन्त्र दोषयुक्त है और वह जनतन्त्र है ही नहीं। इस सभा में ऐसे स्पष्ट कथन को सुनकर मुझे आश्चर्य हुआ। हम यह जानते हैं कि कम से कम एक देश में 300 वर्षों से परिषदात्मक जनतन्त्र का अनुभव किया जा रहा है और हम यह भी जानते हैं कि कुछ प्रसिद्ध अपवादों को छोड़कर संसार के लगभग समस्त देश आज परिषदात्मक जनतन्त्र को प्राप्त करने और इस दिशा में प्रगति करने के लिये प्रयत्न कर रहे हैं। अत: यह कहा जा सकता है कि वे देर से जागे हैं जब कि वे परिषदात्मक प्रजातन्त्र को दोषयुक्त बताते हैं। वे कहते हैं कि यह दुर्भाग्य की बात होगी यदि साठ प्रतिशत बहुमत प्राप्त दल शत प्रतिशत जनसंख्या पर शासन करे। मेरा निवेदन है कि मानव समाज के प्रत्येक कार्य पर सार्वजनिक सर्वोत्तम कल्याण के सिद्धान्त के अनुसार विचार कर उस पर निर्णय करना चाहिये और इस प्रकार का निर्णय केवल बहुमत के आधार पर निर्वाचकों द्वारा ही किया जा सकता है। यह कहना पूरी तरह से ठीक नहीं है कि स्विट्जरलैंड में जैसा जनतन्त्र है वही हमारी आवश्यकताओं के अनुकूल है, और न यह एक पुष्ट बात ही है। हम जानते हैं कि स्विट्जरलैंड में तीन विभिन्न जातियां, जर्मन, फ्रांसीसी और इटालियन को संयुक्त किया गया है। उनकी अपनी परिस्थितियों की आवश्यकताओं के

अनुकूलन के लिये यह किया गया था। मेरा निवेदन है कि जिस प्रकार का जनतन्त्र स्विट्जरलैंड में है वह हमारी परिस्थितियों के अनुकूल होगा ही नहीं। हमें इसका कुछ अनुभव हुआ था जब कि लार्ड वेवल की कृपा से कांग्रेस के साथ मुस्लिम लीग पार्टी एक प्रकार से मिलजुल गई थी। उसका फल जो कुछ हुआ वह वर्तमान इतिहास ही है। हम जानते हैं कि किस प्रकार ऊपर से लेकर नीचे तक समस्त नौकर पेशों में तथा समस्त राजनैतिक दल बन्दी में पृथक्वाद और सम्प्रदायवाद का विष फैल गया हम जानते हैं कि उस समय उन्नति करना कितना कठिन हो गया था। हम जानते हैं कि नीति संबंधी योजनाओं का सम्पादन अथवा अभिपूरण हम क्यों नहीं कर सके। उस सबका फल यह हुआ कि हमें देश का विभाजन स्वीकार करना पड़ा। हम उस प्रयोग को फिर से दोहराना नहीं चाहते हैं। अन्त में मेरा निवेदन है कि यह उचित तथा उपयुक्त होगा कि हम देश की एकता के विरुद्ध यदि हमारे कोई डाह और द्वेष हों तो उनको दूर करें। इन शब्दों में मैं अपने मित्र श्री महबूब अली बेग द्वारा प्रेषित संशोधन का विरोध करता हूं।

***श्री तजम्मुल हुसैनः** श्रीमान्, मैं बहुत ही संक्षेप में भाषण दूंगा। सर्वप्रथम मैं अपने माननीय मित्र श्री महबूब अली बेग द्वारा पेश किये गये संशोधन संख्या 1294 को लेता हूं। अनुच्छेद 61 में यह दिया हुआ है कि "राष्ट्रपति को अपने प्रकार्यों का पालन करने में सहायता तथा मंत्रणा देने के लिये एक मंत्रिपरिषद् होगी, जिसका प्रमुख प्रधान मंत्री होगा।" श्री महबूब अली बेग का संशोधन यह है कि मंत्री 15 होंगे और उनका निर्वाचन अनुपाती प्रतिनिधान की पद्धति से एकलसंक्राम्य मत प्रणाली द्वारा होगा। वे यह नहीं कहते कि इस मंत्रिमण्डल का प्रमुख प्रधान मंत्री होगा। इस अनुच्छेद पर उनकी ये तीन मुख्य आपत्तियां हैं। मैं अपने माननीय मित्र श्री महबूब अली बेग के संशोधन से सहमत नहीं हूं। (*वाह, वाह*) सबसे पहली बात यह है कि वे मंत्रिमण्डल में मंत्रियों की संख्या नियत करना चाहते हैं। हम संख्या किस प्रकार नियत कर सकते हैं? वे 15 मंत्री चाहते हैं। मान लीजिये हमें 10 की ही जरूरत है तो बाकी 5 का क्या करें? मान लीजिये हमें 20 की आवश्यकता है तो हम और नियुक्त नहीं कर सकते? इसलिये श्रीमान्जी, मैं कहता हूं कि विधान में मंत्रियों की संख्या नियत करना मूर्खता है। संसद् अथवा स्वयं मंत्रिमंडल का यह कर्त्तव्य है कि वह यह निश्चय करे कि उसे काम के लिये कितने मंत्रियों की आवश्यकता है।

[श्री तजम्मुल हुसैन]

श्रीमान्, अनुपाती प्रतिनिधान का क्या फल होगा? अनुच्छेद 61 में यह विचार प्रस्तुत किया गया है कि सामान्य निर्वाचन के पश्चात् जो दल बहुमत प्राप्त करता है वह अपना नेता चुनेगा और राष्ट्रपति अथवा गवर्नर जनरल जो भी हो वह उस नेता को मंत्रिमंडल बनाने के लिये आमन्त्रित करेगा। वह नेता मुख्य मंत्री अथवा प्रधान मंत्री कहा जायेगा और वह राष्ट्रपति को अन्य मंत्रियों के नाम देगा। श्रीमान् जी, यदि आप एकलसंक्राम्य मत प्रणाली तथा अनुपाती प्रतिनिधान के आधार पर निर्वाचन करते हैं तो एक ऐसे आदमी का चुनाव भी हो सकता है जो बहुमत प्राप्त दल को फूटी आंखों से भी न देख सके। ऐसी अवस्था में क्या होगा? प्रत्येक देश प्रतिदिन की कार्यप्रणाली में विधान को सुचारू रूप से क्रियान्वित करना चाहता है। (*बाधायें*) मैं निवेदन करता हूं कि यह मूर्खतापूर्ण होगा। और फिर आपको हर बार मेल जोल की सरकार बनानी होगी चाहे कोई विशिष्ट दल बहुमत प्राप्त किये हो या नहीं।

इंग्लैंड में मिला जुला मंत्रिमंडल है। क्योंकि एक बार जब कि मजदूर दल ने सत्ता प्राप्त की तो उदार तथा अनुदार दलों के होने के कारण उनका (मजदूर दल) ही पूर्ण बहुमत में न था तो उन्होंने प्रथम महायुद्ध और द्वितीय महायुद्ध के हेतु एक मिले जुले मंत्रिमंडल का निर्माण किया। परन्तु सदैव मिले जुले मंत्रिमण्डल का निर्माण करना मूर्खतापूर्ण है। इसलिये मैं इसका विरोध करता हूं। दूसरा संशोधन श्री प्रोफेसर शाह का है जो यह नहीं चाहते कि प्रधान मंत्री प्रमुख हो। सब जगह प्रधान मंत्री प्रमुख होता है। इसलिये मैं इसका विरोध करता हूं। अनुच्छेद में यह दिया गया है कि:

> "राष्ट्रपति को अपने प्रकार्यों का पालन करने में सहायता तथा मंत्रणा देने के लिये एक मंत्रिपरिषद् होगी, जिसका प्रमुख प्रधान मंत्री होगा।"

मेरे मित्र कहते हैं कि प्रधान मंत्री प्रमुख नहीं होगा। श्रीमान्, मैं इससे सहमत नहीं हूं। इंग्लैंड में प्रधान मंत्री प्रमुख होता है। यह इंग्लैंड की प्रणाली है और अनेकों वर्षों से वह संतोषजनक रूप में कार्य कर रही है। मेरे मित्र कहते हैं कि इसका जिक्र उनके संविधान में नहीं है पर मेरा निवेदन तो यह है कि उनकी कभी संविधान परिषद् ही नहीं बनी। उनका संविधान परम्परा के आधार पर

विकसित हुआ। उन दिनों उनके यहां प्रधान मंत्री नहीं होता था। धीरे-धीरे यह विचार उत्पन्न हुआ और उन्होंने यह सोचा कि मंत्रिमंडल के प्रमुख के रूप में प्रधानमंत्री का पद बहुत ही आवश्यक है तो अब उनके यहां वह पद है और उससे बड़ा संतोषजनक काम हो रहा है और अपने संविधान में भी इस पद का रखना ठीक है। इसलिये मैं इस संशोधन का भी विरोध करता हूं।

अब मैं श्री ताहिर के संशोधन संख्या 1297 को लेता हूं। श्रीमान्, अनुच्छेद में यह कहा गया है कि मंत्रिपरिषद् प्रधान को मंत्रणा देगा। संशोधन कहता है:

> "सिवा उन प्रकार्यों अथवा उनमें से किसी एक प्रकार्य के पालन करने में जिनके लिये, इस संविधान द्वारा अथवा उसके अन्तर्गत राष्ट्रपति को अपने स्वविवेक का प्रयोग करना अपेक्षित है।"

श्रीमान्, मैं इसे स्वीकार नहीं करता हूं।

***काज़ी सैयद करीमुद्दीन** (मध्यप्रान्त और बरार : मुस्लिम): क्या वे डॉ. अम्बेडकर की ओर से उत्तर दे रहे हैं?

***श्री तजम्मुल हुसैन:** श्रीमान्, मैं डॉ. अम्बेडकर अथवा अन्य किसी व्यक्ति की ओर से नहीं बोल रहा हूं। मैं वही कह रहा हूं जिसके बारे में मैं समझता हूं कि यह होना चाहिये। डॉ. अम्बेडकर के मैंने कई संशोधनों का समर्थन किया है और कइयों का विरोध किया है। मेरे मित्र श्री करीमुद्दीन ने डॉ. अम्बेडकर के किसी संशोधन का भी विरोध नहीं किया है परन्तु मैंने उनके संशोधन का विरोध किया है। अत: इस बात का कोई अर्थ नहीं है कि मैं डॉ. अम्बेडकर का समर्थन कर रहा हूं। मैं यह भी नहीं जानता कि डॉ. अम्बेडकर किस संशोधन को स्वीकार कर रहे हैं। यदि मेरे मित्र श्री करीमुद्दीन पहले से ही बात को जानते हैं कि डॉ. अम्बेडकर किन-किन बातों को स्वीकार करेंगे तो अवश्य ही वे डॉ. अम्बेडकर के विश्वासपात्र हैं।

***उपाध्यक्ष:** शान्ति, शान्ति, श्री तजम्मुल हुसैन! यदि मैं आपके स्थान पर होता तो मैं इस प्रकार की बाधा पर ध्यान न देता। आप अपना भाषण जारी रखिये और मित्रों की बातों पर ध्यान न दीजिये।

***श्री तजम्मुल हुसैन:** मैं अपना भाषण जारी रखूंगा। पर कभी-कभी निराधार आरोपों का उत्तर देना ही पड़ता है। मुझे खेद है कि सभा का जितना समय मुझे लेना चाहिये उससे मैं अधिक ले रहा हूं। अब मैं श्री ताहिर के संशोधन संख्या 1297 पर आता हूं वे चाहते हैं कि जब राष्ट्रपति व्यक्तिगत स्वविवेक का प्रयोग करना चाहे उस समय मंत्रिमंडल उसे मंत्रणा नहीं देगा। श्रीमान्, मैं इसका भी विरोध करता हूं। हम यह नहीं चाहते हैं कि राष्ट्रपति अथवा गवर्नर किसी रूप में भी व्यक्तिगत स्वविवेक का प्रयोग करे। जिन दिनों अंग्रेज यहां पर थे वे भारत शासन अधिनियम, 1935 के अन्तर्गत अपने हितों का संरक्षण करना चाहते थे। उनकी सम्मति में कांग्रेस मंत्रिमंडल के कार्यों में रुकावट डालने के लिये उस अधिनियम में ऐसी व्यवस्था करना नितान्त आवश्यक था। परन्तु अब तो परिस्थिति बिल्कुल ही बदल गई है। इंग्लैंड का बादशाह अब व्यक्तिगत स्वविवेक का बिल्कुल ही प्रयोग नहीं करता है। वह केवल मंत्रिमंडल द्वारा दी गई मंत्रणा का अनुसरण करता है यदि वह उस मंत्रणा को स्वीकार नहीं करता है तो वह पृथक् हो जायेगा न कि मंत्रिमंडल और अन्त में उसे पृथक् होना ही है अत: हम अधिकतर अंग्रेजों के ही संविधान का पालन कर रहे हैं और उससे ठीक-ठीक काम भी हो रहा है और मैं भी अंग्रेजों के संविधान का प्रशंसक हूं, पर मैं समझता हूं कि व्यक्तिगत स्वविवेक का प्रसंग बिल्कुल ही न आना चाहिये। यदि मंत्रिमंडल मंत्रणा देता है तो राष्ट्रपति को उसे स्वीकार करना ही चाहिये। अब संशोधन संख्या 1298 को लीजिये।

***उपाध्यक्ष:** यदि संशोधन संख्या 1297 अस्वीकृत कर दिया जाता है तो यह संशोधन भी रोक दिया जायेगा अत: आपको इसे लेने की आवश्यकता नहीं है।

***श्री तजम्मुल हुसैन:** अब मैं प्रोफेसर शाह के संशोधनों पर आता हूं। उनका पहला संशोधन यह है कि हर बार जब कि मंत्री अथवा प्रधान मंत्री स्थिति के अनुसार नियुक्त किया जाये या चुना जाये तो उसे सभा द्वारा विश्वास का प्रस्ताव प्राप्त करना चाहिये। यह एक अनोखी कार्यप्रणाली है। मैंने तो नहीं सुना कि इस प्रकार की प्रणाली कहीं भी बरती जाती है। कोई नया आदमी आ गया है, आपको उसकी परीक्षा करनी चाहिये। यदि आप कुछ समय के बाद देखते हैं कि आपकी मर्जी जैसा वह काम नहीं करता है तो आप उसे हटा दें। परन्तु

हर बार जब-जब प्रधान मंत्री नियुक्त किया जाये उसे सभा के समक्ष क्यों लाया जाये और क्यों सभा में विश्वास का प्रस्ताव रखा जाये? इस संशोधन को स्वीकार नहीं करना चाहिये। उनका संख्या 2 का संशोधन यह है कि प्रत्येक मंत्री किसी न किसी आगार का निर्वाचित सदस्य होना चाहिये और यदि वह सदस्य नहीं है तो 6 माह के भीतर उसे निर्वाचित होने का प्रयत्न करना चाहिये। मैं इस संशोधन को स्वीकार करता हूं। (*बाधायें*)

कल मैंने इन शब्दों का प्रयोग किया था कि "मैं अपने संशोधन का समर्थन करता हूं।" लोग मुझ पर टूट पड़े। अब मैं इन शब्दों का प्रयोग करता हूं कि "मैं इस संशोधन को स्वीकार करता हूं।" क्योंकि हम सब एक हैं।

अब भी प्रान्तीय विधान-मण्डलों ने उत्तर आगार का मनोनीत सदस्य मंत्री नियुक्त किया जा सकता है। हम यह नहीं चाहते हैं। हम यह चाहते हैं कि उसका निर्वाचन हो। यही युक्ति-युक्त है।

तीसरा संशोधन यह है कि मन्त्रिपरिषद् के कम से कम दो तिहाई सदस्य ऐसे हों जो लोक-सभा के सदस्य भी हों और मंत्रिपरिषद् के कम से कम तिहाई सदस्य ऐसे हों जो राज्यपरिषद् के सदस्य भी हों। मैं इसे मानने के लिये तैयार नहीं हूं। मैं न इसे स्वीकार करता हूं और न इसका समर्थन करता हूं। मैं इसका विरोध करता हूं। मान लीजिये कि लोक-सभा में बहुमत प्राप्त दल—हम उसे अनुदार दल कहेंगे। कांग्रेस का अन्त होना चाहिये और कांग्रेस का अन्त होगा और आर्थिक आधार पर मजदूर दल अथवा अनुदार दल तथा अन्य दलों का निर्माण होगा—तो उस अनुदार दल को, जिसका अवर आगार में बहुमत है, मन्त्रिमंडल बनाने के लिये कहा जाता है और राष्ट्रपति उस दल के नेता से मंत्रिमंडल बनाने के लिये कहते हैं। अब यह संशोधन कहता है कि वह राज्य-परिषद् से कम से कम एक तिहाई सदस्य ले। मान लीजिये उत्तर आगार में उस दल के एक तिहाई सदस्य नहीं हैं तो क्या होगा। यह होगा कि एक से विचार वाले मनुष्य न लिये जा सकेंगे। यह भी आपत्तिजनक है।

संख्या की कोई सीमा नहीं होनी चाहिये। चाहे मंत्री अवर आगार से हो चाहे उत्तर आगार से, इस बात का कोई विचार नहीं होना चाहिये। परन्तु उन सबको एक दल का होना चाहिये।

[श्री तजम्मुल हुसैन]

दूसरा विषय यह है कि संसद् उपमंत्री और संसदीय सचिव नियुक्त करे। मैं समझता हूं कि यही होगा और इस पर मुझे कोई आपत्ति नहीं है, मैं इस संशोधन को स्वीकार करता हूं।

अन्त में यह है कि यदि कोई व्यक्ति किसी अधिकृत न्यायालय द्वारा नैतिक पतन अथवा किसी अन्य अपराध का दोषी पाया जायेगा तो उसको नियुक्त नहीं किया जायेगा। मैं समझता हूं कि यह प्रावधान अच्छा है अत: मैं इसका समर्थन करता हूं।

श्रीमान्, इन बातों को कहने के पश्चात् मैं अपना स्थान ग्रहण करता हूं।

***माननीय श्री के. सन्तानम्:** उपाध्यक्ष महोदय, सभा को अनुच्छेद 61, 62 और 64 पर जरा सावधानी से व्याख्या करनी चाहिये। उनकी शाब्दिक व्याख्या नहीं करनी चाहिये क्योंकि इंग्लैंड के बादशाह और संसद् के एक दीर्घकालीन संघर्ष के पश्चात् इस रूप में शासन की मंत्रिमंडल पद्धति का विकास हुआ है। इस संघर्ष के हर एक कदम पर बादशाह ने कुछ शक्ति दे दी परन्तु अपने सम्मान की संरक्षा के लिये वह उत्सुक रहा। अत: संघर्ष के अन्त में बादशाह ने अपनी समस्त शक्ति तो दे दी पर अपनी समस्त प्रतिष्ठा को संरक्षित रखा। इसी कारण यहां यह कहा गया है कि राष्ट्रपति को अपने प्रकार्यों के पालन करने में सहायता तथा मंत्रणा देने के लिये एक मंत्रिपरिषद् होगी, जिसका प्रमुख प्रधान मंत्री होगा इसका यह अर्थ नहीं हुआ कि सामान्यतया राष्ट्रपति को अपने प्रकार्यों के पालन करने में सहायता तथा मंत्रणा देने का कार्य प्रधान मंत्री का होगा। वास्तव में स्थिति विपरीत अथवा उल्टी है। प्रधान मंत्री का कार्य मंत्रिपरिषद् की सहायता से देश पर शासन करना है और राष्ट्रपति कभी-कभी ही मंत्रिपरिषद् को सहायता तथा मन्त्रणा दे सकता है। अत: हमें इस अनुच्छेद के सार पर विचार करना चाहिये न कि केवल इसकी पदावली पर जो परम्परा के फलस्वरूप विकसित हुई है। हां, यह पूछा जा सकता है कि हम उन परम्पराओं को क्यों अंगीकार करें तथा इन बातों को ठीक वैधिक भाषा में क्यों न रखें। ऐसा करना वांछनीय हो सकता था, पर मैं यह मानता हूं कि यह आसान नहीं है क्योंकि प्रधान मंत्री और मंत्रिपरिषद् ऐसी सत्तायें हैं जो आगार के विश्वास पर निर्भर हैं।

आगार में नित्यप्रति परिवर्तन होते रहते हैं और वह किसी समय भी प्रधान मंत्री तथा मंत्रिपरिषद् में से विश्वास खो सकता है। अत: संविधान में प्रधान मंत्री और मंत्रिमंडल की सत्ता का समावेश करने के लिये संविधान में कुछ कड़ापन रखना पड़ेगा जो चाहे सरकार की मंत्रिमंडल पद्धति के लचीलेपन से असंगत ही हो। लचीलापन ही अंग्रेजी संविधान का सबसे बड़ा गुण है। जब तक प्रधान मंत्री और मंत्रिमंडल आगार के विश्वासपात्र हैं वे पूर्णतया सम्पूर्ण सत्ताधारी हैं और वे सब कुछ कर सकते हैं। पर जब उनमें से विश्वास उठ जाता है तो वे कमजोर होते चले जाते हैं और यह कोई नहीं कह सकता है कि किसी भी समय उनकी स्थिति न जाने कैसी हो जाये। इस लचीली स्थिति के समावेश करने के लिये ही हमने अंग्रेजों के परम्पराश्रित संविधान के शब्दों को अंगीकार किया है। अत: उनकी शाब्दिक व्याख्या करके दोष निकालने में कोई लाभ नहीं। उदाहरणार्थ खंड 2 को ही लीजिये "क्या मंत्रियों ने प्रधान को कोई मंत्रणा दी, और यदि दी, तो क्या इस प्रश्न पर किसी न्यायालय में परिपृच्छा न की जायेगी।"

मेरे मित्र प्रो. के.टी. शाह का इस प्रकार का संशोधन है कि इसमें एक अपवाद होना चाहिये ताकि इस विषय की उस समय परिपृच्छा की जा सके जब संसद् में उच्च न्यायालय द्वारा प्राभियोग लगाया गया हो। सबसे पहले तो यह बात है कि संसद् के उच्च न्यायालय का जिक्र करना विधान की भाषा को अन्धकारमय बनाना है क्योंकि संसद् तो एक भिन्न वस्तु है वह किसी प्रकार से भी न्यायालय नहीं है। सामान्यतया राष्ट्रपति को मंत्रियों द्वारा कोई मंत्रणा नहीं दी जायेगी। वे अपना निर्णय करेंगे और उन निर्णयों को क्रियान्वित करेंगे। अत: प्रधान मंत्री अथवा मन्त्रिपरिषद् द्वारा दी गई किसी मंत्रणा के संबंध में राष्ट्रपति पर प्राभियोग लगाने का प्रश्न ही नहीं उठ सकता। और इस कारण प्राभियोग के विषय में उस मंत्रणा पर विचार करने का प्रश्न ही नहीं है।

श्रीमान्, जो संशोधन प्रस्तुत किये गये हैं उनके संबंध में एक दो बातें और कहूंगा। मैं समझता हूं कि इस प्रकार का विचार प्रस्तुत करना कि श्री बेग का संशोधन साम्प्रदायिक अथवा अन्य आधारों पर निर्भर है, ठीक नहीं है। शासन पद्धतियों में वह भी एक प्रमाणित शासन पद्धति है। उदाहरणार्थ स्विट्जरलैंड की शासन प्रणाली निर्वाचित कार्यपालक मण्डल में विश्वास करती है। वह अमेरीका के कार्यपालक मण्डल और संसदीय कार्यपालक मण्डल के बीच का मण्डल

[माननीय श्री के. सन्तानम्]

है। अत: यद्यपि वहां असंसदात्मक प्रणाली नहीं है परन्तु वहां एक प्रकार का स्थायी कार्यपालक मण्डल है। कुछ परिस्थितियों में यह प्रणाली भी लाभदायक हो सकती है। परन्तु भारत जैसे देश में, जो बहुत बड़ा है और जो भिन्न-भिन्न प्रकार के विरोधी हितों से परिपूर्ण है और जिसकी संसद् में परस्पर कट्टर विरोधी व्यक्ति हो सकते हैं, यह प्रणाली उपयुक्त नहीं हो सकती है। इस आधार पर न कि किसी अन्य दुष्टतापूर्ण भावना के आधार पर इसे अस्वीकार कर देना चाहिये।

श्रीमान्, प्रो. के.टी. शाह एक इस प्रकार का एकाकी युद्ध लड़ते चले जा रहे हैं कि मैं उनकी आलोचना करना नहीं चाहता हूं। उन्होंने अपने ऊपर आवश्यकता से अधिक कार्य लाद लिया है और वह भी बिल्कुल अनावश्यक रूप में। यदि वे प्रमुख बातों पर ध्यान देते तो उनकी बातें अधिक वजनदार हो सकती थीं। उन्होंने इतने लंबे-लंबे संशोधन रखे हैं जिनके संबंध में मेरा विश्वास है कि उनकी वे स्वयं ही जांच नहीं कर सके हैं। उदाहरण के लिये संशोधन संख्या 1300 (2ग) को ही लीजिये। वे कहते हैं:

> "किसी भी व्यक्ति को जो संसद् के दोनों आगारों में से किसी भी आगार का सदस्य नहीं है तब तक मन्त्री नियुक्त नहीं किया जायेगा जब तक कि वह अपनी नियुक्त तिथि से 6 माह के भीतर संसद् के किसी न किसी आगार का सदस्य निर्वाचित न हो।"

मंत्री कब नियुक्त किया जायेगा? 6 माह का काल कब से आरंभ होता है? उसके नियुक्त होने के पूर्व उसको निर्वाचित होना चाहिये और निर्वाचित होने के पहले 6 माह गुजर सकते हैं। अत: यह एक स्पष्ट तथा ठीक नहीं है। ऐसा प्रकट होता है कि यह सोचने के लिये उनको समय नहीं मिला। जब कभी वे उन विषयों पर अनेकों संशोधन प्रस्तुत करते हैं जो समितियों के सावधानतापूर्ण विचार-विमर्श के फलस्वरूप प्रस्तुत होने चाहियें तब यह स्वाभाविक है कि स्वयं नीचे गिर जाते हैं। जब हम इस प्रकार के उलझे हुए संविधान पर विचार-विमर्श कर रहे हों तो व्यक्तिगत रूप में सदस्यों को समस्त संविधान का फिर से मसौदा बनाने का प्रयत्न करने के स्थान में किसी विशेष विषय का संकेत कर तथा विशेष संशोधनों पर जोर देकर संतुष्ट हो जाना होगा। सभा की जानकारी बढ़ाये

बिना इससे तो केवल सभा का समय नष्ट होता है। मैं नम्रतापूर्वक प्रो. के.टी. शाह से यह निवेदन करता हूं कि संविधान का विकल्प प्रस्तुत करने का प्रयत्न न करते हुए वे उन्हीं बातों पर ध्यान दें जिनसे संविधान में सुधार संभाव्य हो। धन्यवाद, श्रीमान्।

***उपाध्यक्षः** डॉ. अम्बेडकर।

***श्री लक्ष्मीनारायण साहू** (उड़ीसा : जनरल): श्रीमान्, यह एक बड़ा ही महत्त्वपूर्ण अनुच्छेद है जिस पर मैं.....

***उपाध्यक्षः** मैं जानता हूं कि ऐसे बहुत से सदस्य हैं जो इस अनुच्छेद पर बोलना चाहेंगे, पर सभा के पास समय बहुत ही कम है और मैं भी समझता हूं कि इस पर काफी वाद-विवाद हो चुका है।

***श्री लक्ष्मीनारायण साहूः** परन्तु, श्रीमान्.....

***उपाध्यक्षः** कृपया अध्यक्ष के आदेशों का उल्लंघन करने का प्रयत्न न करें। डॉ. अम्बेडकर।

***माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकरः** उपाध्यक्ष महोदय, मुझे दुख है कि मैं श्री बेग, श्री ताहिर अथवा प्रो. के.टी. शाह द्वारा प्रस्तुत संशोधन में से किसी संशोधन को भी स्वीकार नहीं कर सकता हूं। अपने संशोधनों के समर्थन में जो बातें उन्होंने कही हैं उनके उत्तर में मैं जितना संक्षेप में हो सकता है उतना संक्षेप में अपनी स्थिति स्पष्ट करना चाहूंगा।

श्री महबूब अली के संशोधन के दो भाग हैं। प्रथम भाग मंत्रिमंडल के मंत्रियों की संख्या नियत करने का प्रयास करता है। उनकी सम्मति में मंत्री 15 होने चाहियें। उनके प्रस्ताव का दूसरा भाग यह है कि मंत्रिमंडल के सदस्यों की नियुक्ति प्रधान मंत्री अथवा प्रधान मंत्री की मंत्रणा से राष्ट्रपति द्वारा न की जाये वरन् सभा द्वारा अनुपाती प्रतिनिधान के आधार पर उनका निर्वाचन हो।

श्रीमान्, उनके संशोधन का प्रथम भाग स्पष्टतया व्यवहार में आने योग्य नहीं है। आरंभ में ही मंत्रिमंडल के सदस्यों की संख्या नियत करना संभव नहीं हैं। यह भी हो सकता है कि प्रधान मंत्री 15 से भी कम मंत्रियों से देश का शासन

[माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकर]

चला सके। तो फिर यह तर्कसंगत बात नहीं है कि जब प्रधान मंत्री इतने मंत्री नहीं चाहता है जितने कि संविधान द्वारा नियत किये गये हैं तो संविधान उस पर 15 मंत्रियों का भार क्यों कर रखे। यह भी हो सकता है कि सरकार का काम इतना अधिक बढ़ जाये कि उसे संभालने के लिये 15 मन्त्री बहुत ही कम हों। ऐसी आवश्यकता आ जाये कि 15 मंत्रियों से भी अधिक मंत्री नियुक्त किये जायें। तो फिर यह बात गलत होगी कि संविधान में मंत्रियों की संख्या सीमित कर दी जाये और प्रधान मंत्री को ऐसे मंत्रियों के नियुक्त करने से रोका जाये जिनकी नियुक्ति कार्य की अधिकता के कारण आवश्यक हो गई हो।

दूसरे संशोधन के संबंध में, कि प्रधान मंत्री की मन्त्रणा से राष्ट्रपति द्वारा मन्त्रियों की नियुक्ति न हो वरन् अनुपाती प्रतिनिधान के आधार पर उनका निर्वाचन हो, मैं यह ठीक-ठीक नहीं समझ सका हूं कि उनके मन के क्या भाव हैं। जहां तक मैं उनके तर्कों को समझ सका हूं उन्होंने यह कहा कि जो तरीका संविधान में दिया हुआ है वह जनतन्त्रात्मक नहीं है। मैं नहीं समझ पाता हूं कि वह कैसे जनतन्त्र विरोधी है। जनता द्वारा निर्वाचित प्रधान मंत्री को प्रौढ़-मताधिकार द्वारा अथवा उन लोगों द्वारा, जो प्रौढ़-मताधिकार के आधार पर चुने गये हैं, निर्वाचित सभा के सदस्यों में से मन्त्री नियुक्त करने की अनुमति देने वाली प्रणाली जनतंत्र विरोधी कैसे हो सकती है यह बात मेरी समझ के बाहर है। मुझे तो यह शंका होती है कि उनके संशोधन का आशय अल्पसंख्यक वर्गों के लिये मंत्रिमंडल में प्रतिनिधान प्राप्त करने से है। यदि ऐसा है तो मैं उनके उद्देश्य से सहानुभूति रखता हूं क्योंकि मैं समझता हूं कि सुशासन का बहुत कुछ अंश इस बात पर निर्भर है कि शासन की बागडोर किनके हाथों में है। यदि शासन का नियंत्रण किसी विशेष दल द्वारा किया जाता है तो इसमें सन्देह नहीं कि शासक वर्ग उस दल के हित साधन के लिये कार्य करेगा जिसके लोग शासन का नियन्त्रण करते हैं और जो उस विशिष्ट दल के प्रतिनिधि है। अतः ऐसा प्रस्ताव रखने में कोई त्रुटि नहीं है कि मन्त्रिमण्डल के चुनाव का ऐसा तरीका हो कि जिससे अल्पसंख्यक समुदायों के सदस्य भी मन्त्रिमंडल में आ सकें। मैं नहीं समझता हूं कि यह लक्ष्य ओछा है या इसमें कोई लज्जा की बात है। फिर भी मैं अपने मित्र श्री महबूब अली बेग का ध्यान इस ओर आकर्षित करना चाहूंगा

कि विधान में कुछ और जोड़ देने से उनके आशय की पूर्ति हो जायेगी और मसौदा-समिति का ऐसा विचार है कि एक और अनुसूची जिसको अनुच्छेद 3-क कहा जाये, बढ़ा दिया जाये। यह देखा होगा कि हमने संविधान में अनुसूची 4 नाम की एक अनुसूची रखी है जिसमें शासक के लिये निदेश लेख दिये गये हैं कि वह किस प्रकार प्रशासन कार्य में स्वविवेक की शक्तियों का प्रयोग करे। हमने एक ऐसा संशोधन पेश करने के लिये निश्चय कर लिया है कि इस अनुसूची के समान एक और अनुसूची रखी जाये जिसमें राष्ट्रपति के लिये भी इसी प्रकार के निदेश लेख हों। प्रस्तावित निदेश लेख का एक खण्ड यह होगा:

> "मंत्रिमंडल में नियुक्ति करते समय मन्त्रियों के चुनने में राष्ट्रपति निम्न रीति के पालन करने का पूर्ण प्रयत्न करेगा अर्थात् वह एक ऐसे व्यक्ति को प्रधान मंत्री नियुक्त करे जिसे वह संसद् में स्थायी बहुमत प्राप्त करने के लिये सबसे अधिक उपयुक्त समझें और फिर प्रधान मंत्री की मंत्रणा से अन्य व्यक्तियों को नियुक्त करे और जहां तक हो सके इनमें अल्पसंख्यक वर्गों के उन सदस्यों को रखे जो सामूहिक रूप में संसद् के विश्वासपात्र होने की सर्वोत्तम स्थिति को ग्रहण कर सकें।"

यदि श्री महबूब अली बेग के मन में संशोधन पेश करते समय यही आशय था तो मैं समझता हूं कि यह निदेश-लेख उनके आशय की पूर्ति कर सकेगा। मैं इस बात को संभव नहीं समझता हूं कि मंत्रिमंडल में किसी विशेष सम्प्रदाय के सदस्यों को रखने के लिये कोई कानूनी प्रावधान बनाया जाये। मेरे विचार से यह इसलिये संभव नहीं हो सकेगा कि हमारे विधान में, जैसा कि सोचा गया है, सामूहिक उत्तरदायित्व का सिद्धान्त निहित है और प्रधान मंत्री पर एक ऐसा सहयोगी लादने से कोई लाभ नहीं जो केवल इस कारण रखा जाये कि वह किसी विशेष अल्पसंख्यक सम्प्रदाय का सदस्य है परन्तु वह नीति की उन आधारभूत बातों से सहमत नहीं है जिनको प्रधान मंत्री तथा उसके दल ने स्वीकार किया है।

अब आइये मेरे मित्र श्री ताहिर के संशोधन पर। वे चाहते हैं कि यह निर्धारित किया जाये कि जहां कहीं राष्ट्रपति को स्वविवेक से प्रकार्य करना हो वहां-वहां मंत्रियों की मंत्रणा स्वीकार करने के लिये बाध्य नहीं होगा। मेरे विचार से

[माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकर]

श्री ताहिर ने उपयोजित होने से पूर्व भारत शासन अधिनियम की धारा 50 की ज्यों की त्यों नकल ही की है। मूल रूप में भारत शासन अधिनियम की धारा 50 में दिया हुआ प्रावधान बिल्कुल ठीक है क्योंकि उस अधिनियम के अन्तर्गत विधि तथा कानून द्वारा गवर्नर जनरल को कुछ स्वविवेकात्मक प्रकार्य सौंपे गये थे जो धारा 11, 12, 19 तथा संविधान के अन्य कई भागों में दिये हुए हैं। जहां तक कि गवर्नर जनरल का संबंध है उसे यहां कोई भी स्वविवेकात्मक प्रकार्य नहीं सौंपे गये हैं। अत: ऐसी कोई स्थिति उत्पन्न नहीं हो सकती है जब राष्ट्रपति को मंत्रिमंडल अथवा प्रधान मंत्री की मंत्रणा के बिना कोई प्रकार्य करना पड़े। इस दृष्टिकोण से यह संशोधन पूर्णतया अनावश्यक है। श्री ताहिर यह न समझ सके कि राष्ट्रपति को नये संविधान के अन्तर्गत कुछ परमाधिकार ही प्राप्त होंगे उसे कोई भी प्रकार्य नहीं करना है और परमाधिकार तथा प्रकार्य में बहुत अन्तर है।

शासन व्यवस्था की संसदात्मक पद्धति में केवल दो ही परमाधिकार हैं जिनका शासक अथवा राज्य का प्रमुख प्रयोग कर सकता है। पहला प्रधानमंत्री की नियुक्ति करना और दूसरा संसद् का विलयन करना। प्रधान मंत्री की नियुक्ति के संबंध में यह संभव नहीं हो सकता है कि राष्ट्रपति में स्वविवेकात्मक शक्ति निहित करने से बचा जाये। राष्ट्रपति में स्वविवेक अथवा अधिकार निहित करने के अभाव में दूसरी रीति, जिसके द्वारा हम प्रधान मंत्री की नियुक्ति की व्यवस्था कर सकते हैं, केवल यही है कि सर्वप्रथम आगार अपना नेता चुने और फिर प्रस्ताव अथवा संकल्प द्वारा उस नेता के प्रति इच्छा प्रकट करने पर प्रधानमंत्री को नियुक्त करने के लिये राष्ट्रपति अग्रसर हो।

***श्री मोहम्मद ताहिर:** एक वैधानिक प्रश्न है। इससे वहां राज्य के शासकों और मंत्रियों की स्थिति किस प्रकार स्पष्ट होगी जहां कि शासकों को स्वविवेकात्मक शक्ति का प्रयोग करने दिया गया है।

***माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकर:** शासक की स्थिति ठीक वैसी ही है जैसी राष्ट्रपति की स्थिति है और मैं समझता हूं कि अभी मुझे इसकी आवश्यकता से अधिक व्याख्या नहीं करनी चाहिये क्योंकि जिस समय हम राज्य

के विधान-मण्डलों और शासकों पर विचार करेंगे उस समय हम पूरी स्थिति पर गौर करेंगे। अत: प्रधान मंत्री की नियुक्ति के संबंध में दूसरी रीति यह है कि आगार को अपना नेता चुनने दिया जाये परन्तु ऐसा प्रतीत होता है कि यह नितान्त अनावश्यक है। चाहे प्रधान मंत्री का आगार में स्थायी बहुमत न होने से अथवा सभा को मान्य न होने से मान लीजिये कि प्रधान मंत्री किसी व्यक्ति को गलत चुनता है तो इसका इलाज तो स्वयं आगार के हाथ में है क्योंकि जैसे ही राष्ट्रपति प्रधान मंत्री की नियुक्ति करता है तो उस विशेष व्यक्ति की नियुक्ति पर आगार को अथवा आगार के किसी सदस्य को अथवा दल को यदि विरोध है तो वह अविश्वास का प्रस्ताव रख सकता है और यदि सभा की वैसी ही इच्छा है तो वह उस व्यक्ति को पद त्याग करने के लिये बाध्य कर सकती है। अत: दोनों रीतियां एक-सी ही हैं इसीलिये यह वांछनीय समझा गया कि इस विषय को राष्ट्रपति के स्वविवेक पर छोड़ दिया जाये।

आगार के विलयन करने के संबंध में जहां तक अंग्रेज विधान विशेषज्ञों का संबंध है उनका कोई निश्चित मत नहीं है। एक मत यह है कि यदि प्रधान मंत्री यह समझे कि आगार अपनी जिद पर है अथवा आगार लोक इच्छाओं का प्रतिनिधान नहीं करता है तो राष्ट्रपति को अथवा शासक को प्रधान मंत्री की विलयन करने की मंत्रणा को स्वीकार करना चाहिये। एक और मत भी है कि प्रधान मंत्री और उसके मंत्रिमंडल की चाहे कुछ भी मंत्रणा हो, राष्ट्रपति यदि यह समझता है कि आगार लोक इच्छाओं का प्रतिनिधान नहीं करता है तो वह अपनी इच्छा से सभा का विलयन कर सकता है।

मेरे विचार से ये केवल परमाधिकार है और देश की शासन व्यवस्था के अन्तर्गत नहीं आते हैं अत: जैसा कि श्री ताहिर ने अपने संशोधन में सुझाया है वैसे किसी प्रावधान के परमाधिकारों के प्रयोग करने को नियमित करने के लिये कोई आवश्यकता नहीं है।

श्रीमान्, अब मैं प्रो. के.टी. शाह के संशोधनों को लेता हूं। मेरे लिये उनके लंबे-लंबे संशोधनों का पढ़ना और यह सारांश निकालना कि उनके लम्बे-लम्बे पदों में वास्तविक तथ्य क्या है, कठिन ही है। मैंने उनको पढ़ा है और मुझे प्रतीत

[माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकर]

होता है कि प्रो. शाह चार बातें चाहते हैं। पहली बात यह है कि कानून द्वारा वे प्रधानमंत्री को नहीं चाहते हैं। दूसरी बात वे यह चाहते हैं कि प्रत्येक मंत्री के नियुक्त होने पर वह मंत्री विधान-मण्डल में उपस्थित हो और उसमें अपने प्रति विश्वास का प्रस्ताव पास कराये। उनकी तीसरी बात यह है कि यदि कोई ऐसा व्यक्ति मंत्री नियुक्त किया जाता है जो नियुक्ति के समय आगार का निर्वाचित सदस्य नहीं है तो वह निर्वाचित होने का प्रयास करे और छः मास के भीतर सदस्य हो जाये। उनकी चौथी बात यह है कि कोई भी व्यक्ति जो उत्कोच भ्रष्टाचार इत्यादि का अपराधी प्रमाणित कर दिया गया हो मंत्री नियुक्त न किया जाये।

श्रीमान्, मैं इन बातों को एक-एक करके अलग-अलग लूंगा। पहली प्रधान मंत्री के संबंध की बात है। मैं नहीं समझ सका हूं कि प्रो. के.टी. शाह क्यों यह सोचते हैं कि प्रधान मंत्री की स्थिति को संविधान में स्पष्ट न किया जाये। यदि मैं उनको ठीक-ठीक समझ सका हूं तो परम्परा के आधार पर कार्यपालक मण्डल के अंगस्वरूप प्रधान मंत्री को यदि रखा जाय तो उनको कोई आपत्ति न होगी। यदि ऐसी बात है, यदि परम्परा द्वारा प्रधान मंत्री के बने रहने पर उनकी कोई आपत्ति नहीं है तब तो मैं समझता हूं कि प्रधान मंत्री की स्थिति को कानूनी तौर पर बयान करने में भी कोई आपत्ति नहीं होनी चाहिये।

इंग्लैंड में भी, जैसा कि वैधानिक कानून के अधिकांश छात्रों को स्मरण होगा, प्रधान मंत्री का एक पद था जिसको परम्परा के आधार पर अभिस्वीकृत किया गया था। बाद में जब कि मंत्रिमण्डल के मंत्रियों के वेतन को नियमित करने के लिये अधिनियम बनाया गया तब मेरा विश्वास है कि सन् 1909 में या उसके लगभग प्रधान मंत्री की स्थिति का कानूनी अभिस्वीकरण किया गया। तो भी इसके पूर्व प्रधान मंत्री था।

मैं अपने मित्र प्रो. के.टी. शाह से यह कहना चाहता हूं कि उनके संशोधन अन्य सिद्धान्त के लिये जिसके अनुसार हम अधिनियम बनाना चाहते हैं अर्थात् सामूहिक उत्तरदायित्व के लिये बड़े घातक होंगे। इस आगार के समस्त सदस्य इस बात के इच्छुक हैं कि सामूहिक उत्तरदायित्व के आधार पर मंत्रिमंडल कार्य करे और सब इस बात में सहमत है कि यह बड़ा ठोस सिद्धान्त है। पर मैं यह

नहीं जानता हूं कि आगार के कितने सदस्य इस बात को समझते हैं कि वह सही तन्त्र कौन-सा है जिससे सामूहिक उत्तरदायित्व का प्रवर्तन होता है। यह स्पष्ट है कि कानून से स्थिर किया हुआ उपचार तो कोई हो ही नहीं सकता। मान लीजिये कि कोई मंत्री मंत्रिमंडल के अन्य सदस्यों से भिन्न मत रखता है और वह अपने उन विचारों को जो मंत्रिमंडल के विचारों से भिन्न हैं प्रकट कर देता है तो सामूहिक उत्तरदायित्व को भंग करने के अपराध में उसे गिरफ्तार करने के लिये कानून का प्रयोग कदाचित असंभव है। यह स्पष्ट है कि सामूहिक उत्तरदायित्व की विधि द्वारा कोई पुष्टि नहीं हो सकती है। यदि कोई पुष्टि है, जिसके द्वारा कि सामूहिक उत्तरदायित्व अमल में लाया जा सकता है तो वह प्रधानमंत्री के द्वारा ही है। मेरे विचार से सामूहिक उत्तरदायित्व दो सिद्धान्तों पर अमल करने से काम में लाया जा सकता है। एक सिद्धान्त यह है कि प्रधान मंत्री की मंत्रणा के अतिरिक्त अन्य प्रकार से किसी भी व्यक्ति को मंत्रिमंडल में मनोनीत नहीं किया जायेगा। दूसरा सिद्धान्त यह है कि यदि प्रधान मंत्री यह कहे कि अमुक सदस्य को बरखास्त कर दिया जाये तो वह सदस्य मंत्रिमंडल के सदस्य के रूप में नहीं रह सकेगा। हमारे लिये सामूहिक उत्तरदायित्व के आदर्श को प्राप्त करना केवल तभी संभव हो सकेगा जब कि मंत्रिमंडल के सदस्य अपनी नियुक्ति और वियुक्ति दोनों विषयों के संबंध में प्रधान मंत्री के अधीन हो। इस सिद्धान्त के प्रभावीकरण के लिये मुझे अन्य कोई उपाय तथा मार्ग सुझाई नहीं देता है।

मान लीजिये कि आपका कोई प्रधानमंत्री नहीं है तब क्या होगा? यह होगा कि प्रत्येक मंत्री राष्ट्रपति के नियंत्रण अथवा प्रभाव के अधीन रहेगा। राष्ट्रपति यदि किसी विशिष्ट मंत्रिमंडल के अनुकूल नहीं है तो उसके लिये यह पूर्णतया संभव होगा कि प्रत्येक मंत्री से एक-एक करके अलग-अलग इस प्रकार बर्ताव करे कि मंत्रिमंडल में फूट उत्पन्न कर दे। इस प्रकार की कल्पना करना असंभव नहीं है। ब्रिटिश पार्लियामेंट में सामूहिक उत्तरदायित्व के कायम होने से पूर्व आपको स्मरण होगा कि वहां का बादशाह ब्रिटिश मंत्रिमंडल में किस प्रकार फूट डाला करता था मंत्रिमंडल तथा पार्लियामेंट में भी वह एक दल रखता था जिसे बादशाह के मित्रों का दल कहा जाता था। सामूहिक उत्तरदायित्व द्वारा इस प्रकार की बातों का अन्त किया गया। जैसा कि मैं कह चुका हूं सामूहिक उत्तरदायित्व

[माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकर]

प्रधान मंत्री के द्वारा ही प्राप्त किया जा सकता है। अत: मंत्रिमंडल रूपी मेहराब का प्रधान मंत्री बीच का मुख्य पत्थर है और जब तक उस पद को नहीं रखते हैं और उस पद पर प्रतिष्ठित व्यक्ति को मंत्रियों के नियुक्त तथा वियुक्त करने का कानूनी अधिकार नहीं सौंपते हैं तब तक सामूहिक उत्तरदायित्व नहीं हो सकता।

श्रीमान्, प्रो. के.टी. शाह की दूसरी बात के संबंध में कि नियुक्त होने पर मंत्री विश्वास का प्रस्ताव प्राप्त करने का प्रयास करे मुझे विश्वास है कि प्रो. के. टी. शाह समझ जायेंगे कि इस प्रकार के किसी प्रावधान की कोई आवश्यकता नहीं है। यह सच है कि ब्रिटिश मंत्रिमंडल के प्रारम्भिक इतिहास में प्रत्येक व्यक्ति के लिये चाहे वह संसद् का सदस्य ही हो यदि वह मंत्री नियुक्त किया जाता था तो यह आवश्यक था कि वह संसद् से अपना त्याग-पत्र दे दे और फिर से चुनाव लड़े क्योंकि यह समझा जाता था कि मंत्रिपद पर नियुक्त हो जाने के पश्चात् वह व्यक्ति बादशाह के प्रभाव के अधीन हो सकता है और ऐसे काम कर सकता है जो लोक-हित के पक्ष में न हों। अंग्रेजों ने स्वयं इस प्रणाली को छोड़ दिया है। कानून द्वारा उन्होंने इस नियम का निराकरण कर दिया है और अब किसी व्यक्ति को या पार्लियामेंट के सदस्य को मंत्री नियुक्त होने पर दुबारा चुनाव लड़ने की आवश्यकता नहीं है। अत: यह प्रावधान बिल्कुल अनावश्यक है। जैसा कि मैंने थोड़ी देर पहले बताया था कि यदि प्रधान मंत्री किसी ऐसे मंत्री को नियुक्त करता है जो उस पद के योग्य नहीं है तो विधान-मण्डल के लिये यह पूर्णतया संभव होगा कि वह चाहे उस मंत्री के या चाहे पूर्ण मंत्रिमंडल के प्रति अविश्वास का प्रस्ताव रखे और इस प्रकार प्रधान मंत्री से या उस मंत्री से जिसे प्रधान मंत्री विधान-मण्डल के कहने पर भी वियुक्त करना नहीं चाहता छुटकारा पा ले। अत: मेरा निवेदन है कि प्रो. के.टी. शाह की दूसरी बात भी अनावश्यक है।

तीसरी बात के संबंध में कि यदि कोई ऐसा व्यक्ति मंत्रिमंडल का सदस्य नियुक्त किया जाता है जो विधान-मंडल का सदस्य नहीं है तो छ: माह के भीतर वह विधान-मंडल का सदस्य हो जाये मैं यह बता दूं कि अनुच्छेद 62 (5) में इसकी व्यवस्था की जा चुकी है। अत: यह संशोधन अनावश्यक है।

उनकी आखिरी बात यह है कि अपराधी प्रमाणित किये गये किसी भी व्यक्ति को राज्य का मंत्री न बनाया जाये। जहां तक उनके उद्देश्य का संबंध है इसमें संदेह नहीं कि वह सराहनीय है और मैं समझता हूं कि सभा का कोई भी सदस्य इस बात का विरोध नहीं करेगा। परन्तु पूरा प्रश्न यह है कि क्या हमें संविधान में इन सब योग्यताओं और निर्योग्यताओं को रखना चाहिये। क्या यह वांछनीय नहीं है और क्या यह पर्याप्त नहीं है कि हम प्रधान मंत्री विधान-मंडल और जनता पर विश्वास रखें वह जनता जो अधिकतर मंत्रियों के तथा मंत्रिमंडल के कार्यों की देखभाल रखती है वह यह देखे कि इस प्रकार का अशोभनीय कार्य दोनों में से कोई भी न कर सके? मैं समझता हूं कि यह एक ऐसा काम है जिसे सम्मानपूर्वक प्रधान मंत्री तथा विधान-मंडल की सद्भावना पर छोड़ा जा सकता है और सामान्य जनता उनकी देख-रेख करेगी ही। इसलिये मैं कहता हूं कि ये संशोधन अनावश्यक है।

***श्री एच.वी. कामत:** कदाचित डॉ. अम्बेडकर साहब की दृष्टि पांचवें सप्ताह की सूची 4 में संशोधन संख्या 47 पर नहीं पड़ी।

***उपाध्यक्ष:** हर एक बात का उत्तर देने के लिये वे बाध्य नहीं हैं। उस संशोधन का उत्तर श्री तजम्मुल हुसैन ने दे दिया है।

***माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकर:** उसके उत्तर की आवश्यकता नहीं है। उन सबको प्रधान मंत्री पर छोड़ा जायेगा।

***उपाध्यक्ष:** अब मैं एक-एक करके संशोधनों पर मत लूंगा।

प्रस्ताव यह है:

"कि अनुच्छेद 61 के वर्तमान खण्ड (1) के स्थान में निम्न खण्ड रखे जायें:

'1 (a) There shall be a Council of Ministers to aid and advise the President in the exercise of his functions,

[उपाध्यक्ष]

(b) The Council shall consist of fifteen ministers selected by the elected members of both the Houses of Parliament from among themselves in accordance with the system of proportional representation by means of the single transferable vote, and one of the ministers, shall be elected as Prime Minister in like manner.' "

[1(क) राष्ट्रपति को अपने प्रकार्यों का पालन करने में सहायता तथा मंत्रणा देने के लिये एक मंत्रिपरिषद् होगी।

(ख) परिषद् में अनुपाती प्रतिनिधान की प्रणाली के अनुसार एकलसंक्राम्य मत द्वारा संसद् के दोनों आगारों के निर्वाचित सदस्यों द्वारा उन्हीं सदस्यों में से 15 निर्वाचित मंत्री होंगे और इसी रीति से उन मंत्रियों में से एक को प्रधान मंत्री निर्वाचित किया जायेगा।]

संशोधन अस्वीकार किया गया।

***उपाध्यक्ष:** प्रस्ताव यह है:

"कि अनुच्छेद 61 के खण्ड (1) में से 'with the Prime Minister at the head' (जिसका प्रमुख प्रधान मंत्री होगा) शब्द निकाल दिये जायें।"

प्रस्ताव अस्वीकार किया गया।

***उपाध्यक्ष:** प्रस्ताव यह है:

"कि अनुच्छेद 61 के खण्ड (1) के अन्त में (हिन्दी रूपान्तर के आरंभ में) निम्न प्रविष्ट किया जाये:

'except in so far as he is by or under this Constitution required to exercise his functions or any of them in his discretion' (सिवा उन प्रकार्यों अथवा उनमें से किसी एक

प्रकार्य के पालन करने में जिसके लिये इस विधान द्वारा अथवा उसके अन्तर्गत राष्ट्रपति को अपने स्वविवेक का प्रयोग करना अपेक्षित है।)

संशोधन अस्वीकार किया गया।

***उपाध्यक्ष:** संशोधन संख्या 1297 के गिर जाने से श्री मोहम्मद ताहिर का संशोधन संख्या 1298 गिरा है। अत: मैं उस पर मत नहीं ले रहा हूं। अब मैं प्रो. के.टी. शाह के संशोधन संख्या 1299 पर मत लूंगा।

प्रस्ताव यह है:

"कि अनुच्छेद 61 खण्ड (2) के अन्त में 'except by the High Court of Parliament when trying a President under section 50' (हिन्दी रूपान्तर में पर शब्द के पश्चात् 'धारा 50 के अन्तर्गत राष्ट्रपति पर अभियोग की जांच करते समय सिवा संसद् के उच्च न्यायालय के अन्य) शब्द प्रविष्ट कर दिये जायें।"

संशोधन अस्वीकार किया गया।

***उपाध्यक्ष:** अब मैं पांचवें सप्ताह की सूची 4 के संशोधन संख्या 47 द्वारा संशोधित किये गये संशोधन संख्या 1300 पर मत लेता है।

"कि अनुच्छेद 61 के खण्ड (2) के पश्चात् निम्न नवीन खण्ड प्रविष्ट किये जाये:

'(2A) On every change in the Council of Ministers, and particularly on every change of the holder of Prime-Ministership, the Prime Minister (alternatively, the President) shall present the new minister as the case may be to the People's House of Parliament, and shall ask for a vote of confidence from that body in the particular minister newly appointed. In the event of an adverse vote in the case of a particular minister, the minister concerned shall forthwith cease to hold office and a new minister appointed. If a vote of confidence in the Council of Ministers collectively is refused, the Council as a whole shall resign and a new Ministry formed in its place.

[उपाध्यक्ष]

(2B) Every minister shall, at the time of his appointment, be either an elected member of one or the other House of Parliament, or shall seek election and be elected member of one or other House within not more than six months from the date of his appointment, provided that no one elected at the time of a General Election, and appointed minister within less than six months of the date of the General Election, shall be liable to seek election.

(2C) No one who is not an elected member of either House of Parliament shall be appointed minister unless he gets elected to one or the other House of Parliament within six months of the date of his appointment.

(2D) Not less than two-thirds of the members of the Council of Ministers shall at any time be members of the People's House of Parliament; and not more than one-third of the members of the Council of Ministers shall at any time be members of the Council of States. Members of the Council of Ministers may have such assistance in the shape of Deputy Ministers or Parliamentary Secretaries as Parliament may by law from time to time determine provided that no one shall be appointed Deputy Minister or Parliamentary Secretary who at the time of his appointment was not an elected member of either House of Parliament, or who is not elected within six months of the date of his appointment to a seat in one or the other House of Parliament.

(2E) No one shall be appointed Minister or Deputy Minister or Parliamentary Secretary, who has been convicted of treason or of any offence against the sovereignty, security, or integrity of the State, or of any offence involving moral turpitude and of bribery and corruption and liable to a maximum punishment of two years' rigorous punishment.

Every minister shall, before entering upon the functions of his office, declare all his right, interest or title in or to any property, business, industry, trade of profession, and shall divest himself of the same either by selling all or any such right, interest, or title in or to any property, business, industry, trade or profession in open market or to Government at the market price; and further, shall take an oath ever to consider exclusively the interests of the country and not seek to promote his own interest or aggrandisement of his family in any act he may do or appointment he may have to make.' "

[(2क) मंत्रिपरिषद् में प्रत्येक परिवर्तन पर तथा विशेषकर प्रधान मंत्रित्व पद को ग्रहण करने वाले व्यक्ति के प्रत्येक परिवर्तन पर प्रधान मंत्री (विकल्पत: प्रधान) यथास्थिति नये मंत्री को संसद् की लोक-सभा में प्रस्तुत करेंगे और उस निकाय से उस नवीन नियुक्त मंत्री के प्रति विश्वास का प्रस्ताव स्वीकार करने के लिये कहेंगे। किसी विशिष्ट मंत्री के संबंध में विरोधी मत प्रकट होने की स्थिति में वह मंत्री उसी समय से पदच्युत हो जायेगा और कोई नया मंत्री नियुक्त किया जायेगा। यदि सामूहिक रूप से मंत्रिपरिषद् पर विश्वास का प्रस्ताव अस्वीकार किया गया तो समस्त परिषद् को पदत्याग करना होगा और उसके स्थान में नया मंत्रिमंडल बनाया जायेगा।

(2ख) नियुक्ति के समय प्रत्येक मंत्री या तो संसद् के दोनों आगारों में से किसी एक का निर्वाचित सदस्य होगा और या निर्वाचित होने के लिये प्रयास करेगा और अपनी नियुक्ति तिथि से 6 माह के भीतर किसी न किसी आगार का सदस्य निर्वाचित हो जायगा, पर कोई भी व्यक्ति जो सामान्य निर्वाचन के समय निर्वाचित किया गया था तथा सामान्य निर्वाचन तिथि से 6 माह के भीतर मंत्री नियुक्त किया गया था वह निर्वाचित होने के लिये प्रयास करने के लिये बाध्य नहीं है।

(2ग) किसी भी व्यक्ति को जो संसद् के दोनों आगारों में से किसी भी आगार का सदस्य नहीं है तब तक मंत्री नियुक्त नहीं किया जायेगा जब तक वह अपनी नियुक्ति तिथि से 6 माह के भीतर संसद् के किसी न किसी आगार का सदस्य निर्वाचित न हो।

[उपाध्यक्ष]

(2घ) किसी भी समय मंत्रिपरिषद् के दो तिहाई से कम सदस्य संसद् की लोकसभा के सदस्य नहीं होंगे, और न किसी समय मंत्रिपरिषद् के एक तिहाई से अधिक सदस्य राज्यपरिषद् के सदस्य होंगे। मंत्रिपरिषद् के सदस्य उपमंत्रियों तथा पार्लियामेंट्री सेक्रेटरी (संसदीय सचिव) के रूप में उनसे ऐसी सहायता प्राप्त कर सकते हैं जिसका संसद् समय-समय पर विधि द्वारा निश्चय करे, पर किसी उस व्यक्ति को उपमंत्री तथा पार्लियामेंट्री सेक्रेटरी नियुक्त नहीं किया जायेगा जो नियुक्ति के समय संसद् के दोनों आगारों में से किसी आगार का भी निर्वाचित सदस्य न हो अथवा जो संसद् के किसी आगार में नियुक्ति तिथि से 6 माह के भीतर निर्वाचित न हो जाये।

(2ङ) जो व्यक्ति राजद्रोह के लिए अथवा राज्य की प्रभुता, सुरक्षा या अक्षुण्णता के विरुद्ध अपराध के लिए अथवा नैतिक दुराचार और उत्कोच और भ्रष्टाचार वाले तथा अधिक से अधिक दो वर्ष के कठोर कारावास से दण्डित होने वाले अपराध के लिए दोष प्रमाणित हुआ है, वह मंत्री या उपमंत्री अथवा संसदीय सचिव नियुक्त नहीं किया गया।

"अपने पद के प्रकार्यों को संभालने के पूर्व प्रत्येक मंत्री किसी सम्पत्ति वाणिज्य, उद्योग, व्यापार अथवा व्यवसाय में अथवा उनके संबंध में अपने समस्त स्वत्व, हित, अथवा स्वामित्व की घोषणा करेगा और सम्पत्ति, वाणिज्य, उद्योग, व्यापार अथवा व्यवसाय में या उसके संबंध में अपने उन सब अथवा उनमें से किसी भी ऐसे स्वत्व हित अथवा स्वामित्व को खुले बाजार में अथवा बाजार की दर से सरकार को बेच कर उन से स्वयं पृथक् हो जायेगा; और फिर इस बात की शपथ ग्रहण करेगा कि वह सदैव देश के हितों का पूरा पूरा ध्यान रखेगा और जो कोई भी कार्य उसे करना है उसके करने में अथवा जो नियुक्ति उसे करनी है उसके करने में वह अपने निजी हितों को उन्नत करने के लिये अथवा अपने कुटुम्ब के अभ्युदय के लिये प्रस्ताव नहीं करेगा।]"

संशोधन अस्वीकार किया गया।

***उपाध्यक्ष:** चौथी सूची का संशोधन संख्या 46 रुक जाता है। श्री कामत इस बात को समझ जायेंगे कि मैं उस पर क्यों मत नहीं ले रहा हूं। संशोधित रूप में संशोधन संख्या 1300 के अस्वीकार हो जाने से वह एक जाता है।

अब मैं अनुच्छेद 61 पर सभा का मत लूंगा।

प्रस्ताव यह है:

"कि अनुच्छेद 61 विधान का अंग माना जाये।"

प्रस्ताव स्वीकार किया गया।

अनुच्छेद 61 विधान में प्रविष्ट किया गया।

अनुच्छेद 62

***उपाध्यक्ष:** सभा अनुच्छेद 62 पर विचार-विमर्श आरंभ करेगी। प्रस्ताव यह है:

"कि अनुच्छेद 62 विधान का अंग माना जाये।"

श्री महबूब अली बेग संशोधन संख्या 1302 पेश कर सकते हैं। मगर नहीं, मैं देखता हूं कि पूर्व अनुच्छेद पर निर्णय हो जाने के कारण वह रुक जाता है।

***महबूब अली बेग साहिब बहादुर:** जी हां, ऐसा ही है।

***उपाध्यक्ष:** काजी सैयद करीमुद्दीन के नाम का संशोधन संख्या 1303 अब पेश किया जा सकता है।

मुझे संशोधन प्रस्तुत करने वाले सज्जन को यह बता देना चाहिये कि भाग (1) और (2) रुक जाते हैं। वे केवल भाग (3) पेश कर सकते हैं।

***श्री टी.टी. कृष्णमाचारी:** क्या मैं यह संकेत कर सकता हूं कि पहले अनुच्छेद के अस्वीकृत हो जाने से यदि इस संशोधन के भाग (1) और (2) रुक जाते हैं तो संशोधन के शेष भाग को भी पेश नहीं किया जा सकता।

***उपाध्यक्षः** संशोधन के भाग (3) को पेश किया जा सकता है। वह मंत्रिमंडल के सदस्य को हटाने से संबंध रखता है।

***काजी सैयद करीमुद्दीनः** श्रीमान्, आपके इस आदेश से कि मेरे संशोधन के उपखण्ड (1) और (2) रुक जाते हैं मेरे लिये भाग (3) और (3क) पर भाषण देना वास्तव में कठिन हो गया है।

***माननीय श्री के. सन्तानम्ः** पहले संशोधन के अस्वीकृत हो जाने के कारण वह रुक नहीं गया है। यदि मंत्रियों का निर्वाचन नहीं होता है तो ऐसा हरगिज नहीं होगा। जिस रूप में प्रस्तुत है वह बिल्कुल निरर्थक है।

***काजी सैयद करीमुद्दीनः** वह निरर्थक नहीं है।

***उपाध्यक्षः** कृपया श्री सन्तानम् को बोल लेने दीजिये।

***माननीय श्री के. सन्तानम्ः** भाग (3) भाग (2) का समनुवर्ती है। भाग (3) पर तभी विचार किया जा सकता है जब कि भाग (2) स्वीकार कर लिया जाये। अन्यथा उसका कोई अर्थ नहीं होगा। वह स्थिति तभी उत्पन्न हो सकती है जब कि मंत्रियों का निर्वाचन किया जाये। यहां तो मंत्रियों की राष्ट्रपति द्वारा केवल नियुक्ति ही होती है। और फिर यह संशोधन उनको स्थायी बना देगा। उनका तर्क यह है कि यदि उनका निर्वाचन किया जाता है तो उनको हटाना नहीं चाहिये।

***काजी सैयद करीमुद्दीनः** मेरा संशोधन मंत्रियों के हटाने के संबंध का है।

***श्री टी.टी. कृष्णमाचारीः** श्रीमान्, क्या मैं यह बता सकता हूं कि यदि अनुच्छेद 62 का भाग (2) रहता है और उसको निकाला नहीं जाता है तो संशोधन संख्या 1303 का भाग (3) पेश नहीं हो सकता। अनुच्छेद 62 के भाग (2) में यह दिया गया है कि "·····मंत्री अपने पद पर आसीन रहेंगे"। यदि यह भाग रहता है तो माननीय सदस्य के संशोधन के भाग (3) को इसके प्रसंग में कोई स्थान नहीं मिल सकता।

***उपाध्यक्षः** मंत्रिपरिषद् के सदस्यों को हटाने के लिये श्री करीमुद्दीन एक विशेष प्रावधान चाहते हैं। क्या ऐसा नहीं है?

***काजी सैयद करीमुद्दीनः** जी हां।

***उपाध्यक्षः** श्री कृष्णमाचारी का विचार यह है कि वह रुक जाता है। क्यों?

***श्री टी.टी. कृष्णमाचारीः** यदि माननीय सदस्य अपने उद्देश्य की पूर्ति करना चाहते हैं तो सर्वप्रथम उपखण्ड (2) को निकाल देना होगा। यदि उनके संशोधन के भाग (1) और (2) पेश नहीं किये जाते हैं तो भाग (2) किसी प्रकार से भी संगत नहीं होगा।

***काजी सैयद करीमुद्दीनः** मेरे संशोधन के भाग (1) और (2) का भाग (3) से कोई संबंध नहीं है।

***उपाध्यक्षः** इसको (2) और (3) के स्थान में समझा जा सकता है। जो कुछ हो मैं उन्हें अपनी बात रखने की आज्ञा देता हूं।

***काजी सैयद करीमुद्दीनः** उपाध्यक्ष महोदय, मैं उपखण्ड (3) और (3क) को संविधान में रखने के लिये संशोधन पेश करता हूं:

"(3) A member of the Cabinet shall not be liable to be removed except on impeachment by the House on the ground of corruption or treason or contravention of laws of the country or deliberate adoption of policy detrimental to the interests of the State.

(3A) The procedure for such impeachment will be the same as provided in article 50."

[(3) भ्रष्टाचार अथवा राजद्रोह अथवा देश के कानून का विरोध करने अथवा राज्य हित के लिये घातक नीति को जान बूझ कर ग्रहण करने के आधार पर आगार द्वारा प्राभियोग लगाने के अतिरिक्त अन्य किसी प्रकार से मंत्रिमण्डल का सदस्य हटाया नहीं जा सकेगा।

(3क) ऐसे प्राभियोग के लिये वही विधि होगी जो अनुच्छेद 50 में प्रावहित है।]"

श्रीमान्, मेरा निवेदन यह है कि वर्तमान समय में देश में सरकार का

[काजी सैयद करीमुद्दीन]

कार्यपालक तन्त्र बड़ी शीघ्रता से पतन की ओर जा रहा है क्योंकि विधान-मण्डल के सदस्य और परिषदों में बहुसंख्यक दलों के सदस्य मंत्रियों पर बहुत जोर डालते हैं। यदि मंत्री विधान-मण्डल के सदस्यों और उनके समर्थकों की बात पर ध्यान नहीं देते हैं तो उसका फल यह होता है कि उनको हटाया तक जा सकता है। वर्तमान परिस्थितियों में यह स्पष्ट है कि कांग्रेस हाई कमान्ड ने भी यह अनुभव किया है कि कोई ऐसी प्रणाली सोचनी चाहिये जिससे मंत्रियों को विधान-मंडल के सदस्यों तथा उनके समर्थकों की प्रार्थनाओं को स्वीकार करने के लिये बाध्य न होना पड़े। मध्य-प्रान्त में माननीय पंडित मिश्रा ने ये स्पष्ट आदेश निकाल दिये हैं कि सरकारी नौकर कांग्रेसियों और उनके समर्थकों को किसी प्रकार का हस्तक्षेप न करने दें। इसका अर्थ यह है कि इस देश में कार्यपालक मण्डल पर वे लोग प्रभाव डालते हैं जो दल के समर्थक हैं। जब तक मंत्री यह न समझें कि वे अपने पदों पर सुरक्षित हैं तब तक यह संभव है कि देश के दिन प्रति दिन के प्रशासन में हस्तक्षेप हो। अतः मेरा निवेदन यह है कि स्थायी तथा सुदृढ़ सरकार बनाने के लिये, जिस पर साधारण लोगों और उनके समर्थकों का प्रभाव न पड़े यह बहुत ही आवश्यक है कि आगार द्वारा वह सरकार हटाई न जा सके। मैंने भाग (3) में यह रखा है "भ्रष्टाचार अथवा राजद्रोह अथवा देश के कानून का विरोध करने अथवा राज्य के लिये घातक नीति को जान बूझ कर ग्रहण करने के आधार पर प्राभियोग के द्वारा अन्य किसी प्रकार से" उनको नहीं हटाया जायेगा।

***श्री महावीर त्यागी:** अविश्वास के प्रस्ताव के संबंध में क्या होगा? क्या उसको पेश किया जा सकता है या नहीं?

***काजी सैयद करीमुद्दीन:** जी नहीं।

(संशोधन संख्या 1304, 1305, 1306, 1307 और 1308 पेश नहीं किये गये।)

***प्रो. के.टी. शाह:** उपाध्यक्ष महोदय, मैं यह प्रस्ताव पेश करता हूं:

"कि अनुच्छेद 62 के खण्ड (1) में 'and the other minister's' शब्दों के पूर्व 'from the members of the party commanding a majority of votes in the People's

House of Parliament' हिन्दी रूपान्तर में खण्ड के प्रारंभ में (संसद् के लोकागार में बहुमत प्राप्त दल के सदस्यों में से) शब्द प्रविष्ट किये जायें।"

संशोधित खण्ड इस प्रकार पढ़ा जायेगा:

"The Prime Minister shall be appointed by the President from among the Party commanding a majority of votes in the People's House of Parliament, and the other Ministers, etc."

(संसद् के लोकागार में बहुमत प्राप्त दल के सदस्यों में से प्रधान मंत्री की नियुक्ति राष्ट्रपति करेगा और अन्य मंत्रियों को, प्रधान मंत्री की मंत्रणा पर राष्ट्रपति नियुक्त करेगा।)

श्रीमान्, यह केवल इस विचार को स्पष्ट करने के लिये है कि मंत्रिमंडल विधान-मंडल के प्रति केवल सामूहिक रूप में ही उत्तरदायी नहीं है वरन् उसमें समान विचार के चुने हुए व्यक्ति होने के कारण इस बात की प्रत्याभूति भी हो जाती है कि वह आगार का विश्वासपात्र भी है। इस बात को निश्चित करने के लिये कि मंत्रिमंडल केवल स्थायी ही नहीं है वरन् वह सभा का विश्वासपात्र भी है, मेरे विचार से यह आवश्यक है कि इस बात को स्वयं संविधान में स्पष्ट किया जाये। जो लोग चुने हुए लोक प्रतिनिधियों के प्रति मंत्रिमंडल के सामूहिक उत्तरदायित्त्व के सिद्धान्त को स्वीकार करते हैं उनको इस सुझाव में कोई भी दोष नहीं निकालना चाहिये क्योंकि यह केवल उस उद्देश्य को स्पष्ट करता है जो नि:सन्देह इस समूचे खण्ड का और वास्तव में इस समूचे संविधान का उद्देश्य है।

मैं समझता हूं कि मैं स्वयं उन लोगों की समाज में अप्रिय बन रहा हूं जो इतने अथवा ऐसे संशोधनों को पसन्द नहीं करते हैं जिनको मैं प्रस्तुत करता हूं या जो मेरे सुझाये गये खण्डों की बहुलता के कारण उनके सार को समझने में असमर्थ हैं। मुझे बहुत खेद है कि मैं ऐसा करने के लिये विवश हूं क्योंकि मैं यह नहीं सोचता हूं कि मेरा कार्य केवल यही हो कि जो लोग स्वीकार नहीं करते हैं उनसे कोई बात स्वीकार करा लूं। जो देखना नहीं चाहते उनके बराबर कोई

[प्रो. के.टी. शाह]

अन्धा नहीं और जो सुनना नहीं चाहते उनके बराबर कोई बहरा नहीं। श्रीमान्, मेरा काम यह नहीं है कि मैं इन संशोधनों को स्वीकार कराऊं। मैं यह मानता हूं कि मेरा काम यह है कि सभा के समक्ष प्रत्येक विषय पर अपने विचार प्रकट कर दूं और मेरे तर्कों को सुनने के पश्चात् यह आगार का कार्य है कि वह उस विचार को स्वीकार करे अथवा अस्वीकार। जीवन काल में पैगम्बरों का कभी सम्मान नहीं होता है। जो काम मैंने स्वयं अपने को सौंपा है उसके बारे में मैं यह नहीं सोचता कि अपने विचारों को सफलतापूर्वक स्वीकार करा लूं। मैं अपने मित्र श्री सन्तानम् का बड़ा कृतज्ञ हूं जिन्होंने कृपापूर्वक मुझ पर, मैंने जो भारी बोझ अपने कंधे पर रख लिया है और जिस बोझ को वे अनावश्यक समझते हैं उसके प्रति करुणा प्रकट की। पर, श्रीमान्, मैं फिर दोहराता हूं कि मैं यह नहीं मानता कि मेरा काम केवल इतना ही है कि मैं जिन प्रस्तावों को सभा के सामने रखता हूं उनको सभा द्वारा स्वीकार करा लूं। मुझे इस सभा की कार्यप्रणाली के अनुसार कोई वैकल्पिक विधान प्रस्तुत नहीं करना है वरन् प्रत्येक विशेष खण्ड पर जिस समय विचार हो संशोधन प्रस्तुत करना है। तदनुसार, नियमों का उल्लंघन किये बिना, मेरे लिये यह असंभव होगा कि जो विचार मेरे मन में हैं उनको सभा के सामने प्रकट न करूं। जो पहले कार्यपालक मंडल विधान और न्यायाधीश वर्ग के अधिकारों को पृथक् करने के हामी थे हो सकता हे कि वे यह ठीक समझें कि वे अपने विचारों को बदल दें, वे अब इस विषय के बारे में भिन्न प्रकार से सोचें और यहां तक कि वे अपने पद में भी परिवर्तन कर लें। इस पर मेरी कोई आपत्ति नहीं है। पर मैंने तो अपने तई कभी यह विश्वास नहीं किया है कि राजनीति में दृढ़ता गुण नहीं है। राजनीतिज्ञों में दृढ़ता कोई गुण न हो। दुर्भाग्यवश इस सिद्धान्त को न मान सकने के कारण बिना इस बात पर विचार किये कि सभा उनको स्वीकार करेगी ही मैं आगार में अपने विचार प्रस्तुत करता चला जा रहा हूं। हर बार जब मैंने विशिष्ट सिद्धान्तों को प्रस्तुत करने का प्रयत्न किया है सभा की मेरी बात मानने के प्रति अनिच्छा रही है। पर मैं आपको यह आश्वासन देता हूं कि जब तक सभा के किसी विशिष्ट प्रस्ताव द्वारा मुझ पर यह पूरी-पूरी रोक नहीं लगा दी जायेगी कि मेरे समस्त संशोधन पेश करने के पूर्व ही

अस्वीकार कर दिये जायेंगे तब तक मैं अपने हर एक संशोधन को प्रस्तुत करूंगा, उन पर भाषण दूंगा और सभा का उन पर जो भी मत हो उसे मानूंगा।

***उपाध्यक्ष:** सभा कल प्रात: 10 बजे तक स्थगित की जाती है।

तत्पश्चात् शुक्रवार ता० 31 दिसम्बर सन् 1948 ई. के
प्रात: 10 बजे तक सभा स्थगित हुई।